

ସଂସ୍କାର—
ଆତ୍ମୀ-ଆତ୍ମୀ
ସଂସ୍କାର ମିତ୍ର

୧୫

ମୂଳିକ ସଂସ୍କାର
ସଂସ୍କାର ୧)

ସଂସ୍କାର—
ଆତ୍ମୀ-ଆତ୍ମୀ-ଆତ୍ମୀ,
ଆତ୍ମୀ-ଆତ୍ମୀ-ଆତ୍ମୀ,

प्रस्तावना

‘अज्ञातशत्रु’ के लेखक—जिनसे हिन्दी पाठक खूब अच्छी तरह परिचित हैं—हिन्दी के उन इने गिने लेखकों में से हैं

जिन्होंने मातृ-भाषा में मौलिकता का आरम्भ किया है। उनकी कृतियाँ मौलिक हैं; यही नहीं, वे महत्वपूर्ण भी हैं।

यों तो उनकी रचना और शैली में सर्भी जगह उत्कृष्टता है; पर उनके नाटक तो हिन्दी-संसार में एक दम नई चीज़ हैं। वे आज की नहीं, आगामी कल की चीज़ हैं। वे हिन्दी-साहित्य में एक नए युग के विधायक हैं। न विचारों के खयाल से, न कथानक के खयाल से, न लक्ष्य के खयाल से आज तक हिन्दी में इस प्रकार की रचना हुई है, न अभी होती ही दीख पड़ती है।

हाँ, वह समय दूर नहीं है जब ‘विशाख’ और ‘अज्ञातशत्रु’ के आदर्श पर हिन्दी में धड़ाधड़ नाटक निकलने लगेंगे। परन्तु वे अनुकरण मात्र होंगे। ‘प्रसाद’ जी की कृतियों के निरालेपन पर उनका कोई असर न पड़ेगा।

सम्भव है कि हमारा कथन बहुतों को व्याजस्तुति मात्र जान पड़े, पर समय इन पंक्तियों की सत्यता साबित करेगा। अस्तु, हम प्रकृत विषय से अलग हुए जा रहे हैं—

आश्चर्य ही का उद्दीपन करेगा। वह, प्रबल प्रतिघात तथा घृत्तियों को विपरीत धक्के खिलाकर उत्तेजित करके अथवा, बलवती वासनाओं को दुर्दान्त मानवरूप में अति चित्रण करके समाज में कूतूहल उपजावेगा। उसकी चंचलता बढ़ावेगा और उसमें क्रान्ति करा देगा। ऐसे ही नाटक चाहे वे रचना में प्रसादान्त क्यों न हों, मानवता के लिए, परिणाम में विपादान्त होते हैं।

किन्तु जहाँ वासनाओं का चरित्र के साथ उत्थान और पतन तथा संघर्ष होगा, साथ ही उत्कट वासनाओं का आरम्भ होकर शान्त हृदय में अवसान होगा, वह नाटक मरणान्त भले ही हो किन्तु है मानवता के लिए प्रसादान्त। 'प्रसाद' जी के नाटकों में एक यह भी मुख्य विशेषता है।

'अजातशत्रु' का अन्तिम दृश्य इसका प्रस्तुत प्रमाण है। यद्यपि अंत में विम्वसार का लड़खड़ाता यवनिकापतन के साथ उसके मरण का शोक है। किन्तु, जिन वाक्यों को कहता हुआ वह लड़खड़ाता है वह वाक्य तथा उसी क्षण मगधोन् गौतम का प्रवेश, विम्वसार के हृदय की, तथा उस अवसर की पूर्ण शान्तिका सूचक है।

हाँ, 'प्रसाद' जी के नाटक ऐसे ही हैं। वे न तो केवल अन्तर्द्वन्द्व को लेकर मर्यादालोक में, चतुर्मुख की मानसी सृष्टि की तरह चमत्कार पूर्ण किन्तु निःसार और निरवलम्ब जगत् की अद्यतारणा करते हैं। न केवल वाद्यद्वन्द्व दिखाकर मानवता के सामने पाश्र्व्य आदर्श रखते हैं। वरन्, वे इन दोनों अंगों के समुचित संमिश्रण होने के कारण मानवता के उद्यतम आदर्श के पूर्ण व्यञ्जक हैं। अतएव मानवता की वे एक बड़ी भारी पूँजी हैं।

अनुसूची

[illegible]

“अग्नि है अमर व होकर किसी विषय जग के योग्य विषय
 हुआ है वह अमरिष्य वृक्ष होकर और अमर की ओर हुए वह व
 बदली—अमर के किसी वृक्ष को अमरिष्य कहते हैं जो वृक्ष अमर है
 व अमर—जो वृक्ष अमर को अमर वृक्ष कहते हैं व अमर ।”

“युग १” की श्रेष्ठ शक्ति का उदाहरण दो हैं “अनुभव” व “वचन” ।
 वचन अत्यन्त ही शक्तिशाली (शक्ति) शक्ति का साधक है ।

ਦੁਸਰਾ ਹੀ ਕਹਿੰ, ਦੂਜੇ ਸੰਬੰਧ ਨਾਲ ਤੋਂ ਭਾਵਨਾ ਅੰਤਰਿਕ ਹੈ, ਅੰਤ
ਵਸਤੂ ਦੂਰ, ਬੜਾ ਅਣਮਲਾਗੂ ਹੋ ਜਾਣ ਕੇ ਦੂਜੇ ਕਾਨੂੰ ਵਿਚ ਬਣਾਇਆ ਹੈ ।

[illegible]

३१३ श्री गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार प्रणम्य विनम्र निवेदन है कि

हम यही चाहते हैं कि 'अज्ञातशत्रु' पढ़कर पाठक हमारी समीक्षा की जाँच करें ।

हाँ, इस नोट के समाप्त करने के पहले एक बात और कहनी है—

भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखे जाने वाले नाटकोंमें, उनके लेखक घटनाकाल के रहन सहन, चाल व्यवहार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते । उनके पात्रोंके नाम भर तो ऐतिहासिक रहते हैं लेकिन अपने आचार व्यवहार से वे वर्तमान काल के मनुष्य—सो भी स्वदेश के नहीं, पश्चिम के—जान पड़ते हैं ।

किन्तु, 'प्रसाद' जी इस दोष से प्रायः बिल्कुल बचे हैं । अभी तक हमारे पूर्वजों के सामाजिक जीवन की बहुत ही थोड़ी खोज हुई है । जो कुछ हुई है 'प्रसाद' जी अपने नाटकों में उसका पूर्ण उपयोग करने के भागी हैं ।

काशी
२०-११-२२ }

कृष्णदास

Abstract

'अन्ध' के अन्धों का तो भी परिचय, उदय, अस्त आदि देखना सम्भव है कि वे पूर्ण अन्ध हैं। उसका विवरण, आध्यात्मिक होने के कारण क्या करी। अन्धों का दर्शन हुआ कि है कि वह भी-ने गिने, अन्ध इसी अन्ध के अन्ध काश्त द्वारा उस अन्धों में सामाजिक विरोध को, जिसने अन्ध को ईश्वर की-के अन्ध अन्ध अन्ध के अन्धों में अन्ध का अन्ध अन्ध की परिचय को अन्ध अन्ध अन्ध अन्ध है, जिस अन्धों में अन्ध अन्ध है—

[illegible]

“ਕੁਝ ਵੀ ਹੋਵੇ ਸਾਨੂੰ ਅਸਰ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇ” ਸੋ “ਸਰਕਾਰ” ਨੇ ਹੀ ਕੀਤਾ।
 ਹਰ ਸਰਕਾਰ ਨੇ ਕੀਤਾ (ਸਰਕਾਰ) ਨੇ ਹੀ ਕੀਤਾ।

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

[illegible][illegible]

हम यही चाहते हैं कि 'अजातशत्रु' पढ़कर पाठक हमारी समीक्षा की जाँच करें।

हाँ, इस नोट के समाप्त करने के पहले एक बात और कहनी है—

भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखे जाने वाले नाटकोंमें, उनके लेखक वटनाकाल के रहन सहन, चाल व्यवहार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनके पात्रोंके नाम भर तो ऐतिहासिक रहते हैं लेकिन अपने आचार व्यवहार से वे वर्तमान काल के मनुष्य—सो भी स्वदेश के नहीं, पश्चिम के—जान पड़ते हैं।

किन्तु, 'प्रसाद' जी इस दोष से प्रायः बिल्कुल बचे हैं। अभी तक हमारे पूर्वजों के सामाजिक जीवन की बहुत ही थोड़ी खोज हुई है। जो कुछ हुई है 'प्रसाद' जी अपने नाटकों में उसका पूर्ण उपयोग करने के भागी हैं।

काशी
२०-११-२२ }

कृष्णदास

अज्ञातगुरु

संग-साहित्य प्रेमियों के एक दल द्वारा आयोजित समारोह कायकार द्विवेक बाबू का कथन है—“जिस नाटक में अज्ञातगुरु दिखाया जाए वही नाटक उच्च श्रेणी का होगा है—अन्तर्विशेष के रहे बिना उच्चश्रेणी का नाटक बन ही नहीं सकता।” यह सिद्धान्त किसी संग में ठीक है, क्योंकि ऐसा होने से काव्य में प्रशंसित सोझोत्तर समझाए जायगा है। किन्तु, वही सिद्धान्त असम है, ऐसा मानना कठिन है, क्योंकि अन्तर्विशेष से बाध्यगुरु, जगन्, का उद्भव है और इस बाध्यगुरु का काल-कर्म से शीघ्र अन्तर्गत होगा है—इसी का चित्रण कवि के असीम को शीघ्र शरीर में आता है।

अज्ञातगुरु का अर्थाना में घटना का सम्यक रूप देना, उसे समानता का क्षेत्र बना देना, छोटी छोटी घटनाओं पर अवलम्बित आध्यात्मिकताओं का काम है। यदि नाटक अपने ऊपर यह भार उठाये तो उनसे वृत्तियों को केवल समझना की शिक्षा मिलेगी, और शब्द-वाद की पुष्टि होगी। और, चरित्र-गान को उल्लङ्घन देने से, तथा मानव-समाज के शास्त्र-शासन से साक्षात् होने से—जो नाटक का उद्देश्य नहीं, तो निर्देश अवश्य है—वे अन्तर्गत बौद्ध ही रहेंगे।

अज्ञातगुरु का—जगन् का—द्वारे ज्ञान से शीघ्र साहित्य है। इसी अज्ञातगुरु से हम अपने चरित्र के द्वारे उल्लङ्घन प्रदान करने हैं, कार्यों करने हैं, अनुष्ठान करने हैं। अतः जो चरित्र मानवता की आध्यात्मिकता के लक्ष्य होकर नहीं बने शीघ्र मिलता है। साथ ही शीघ्र शीघ्र ही लक्ष्य हो जायेगा। जो दूर है वह केवल कीदृश और

आश्चर्य ही का उद्दीपन करेगा। वह, प्रथम प्रतिघात तथा वृत्तियों को विपरीत धक्के खिलाकर उत्तेजित करके अथवा, बलवती वासनाओं को दुर्दान्त मानवरूप में अति चित्रण करके समाज में कुतूहल उपजावेगा। उसकी चंचलता बढ़ावेगा और उसमें क्रान्ति करा देगा। ऐसे ही नाटक चाहे वे रचना में प्रसादान्त क्यों न हों, मानवता के लिए, परिणाम में विपादान्त होते हैं।

किन्तु जहाँ वासनाओं का चरित्र के साथ उत्थान और पतन तथा संघर्ष होगा, साथ ही उत्कट वासनाओं का आरम्भ होकर शान्त हृदय में अवसान होगा, वह नाटक मरणान्त भले ही हो किन्तु है मानवता के लिए प्रसादान्त। 'प्रसाद' जी के नाटकों में एक यह भी मुख्य विशेषता है।

'अज्ञातशत्रु' का अन्तिम दृश्य इसका प्रस्तुत प्रमाण है। यद्यपि अंत में विम्बसार का लड़खड़ाता यवनिकापतन के साथ उसके मरण का द्योतक है। किन्तु, जिन वाक्यों को कहता हुआ वह लड़खड़ाता है वह वाक्य तथा उसी क्षण भगवान् गौतम का प्रवेश, विम्बसार के हृदय की, तथा उस अवसर की पूर्ण शान्तिका सूचक है।

हाँ, 'प्रसाद' जी के नाटक ऐसे ही हैं। वे न तो केवल अन्तर्द्वन्द्व को लेकर मर्त्यलोक में, चतुर्मुख की मानसी सृष्टि की तरह चमत्कार पूर्ण किन्तु निःसार और निरबलम्ब जगत् की अवतारणा करते हैं। न केवल बाह्यद्वन्द्व दिखाकर मानवता के सामने पाश्र्व-आदर्श रखते हैं। वरन्, वे इन दोनों अंगों के समुचित संमिश्रण होने के कारण मानवता के उच्चतम आदर्श के पूर्ण व्यंजक हैं। अतएव मानवता की वे एक बड़ी भारी पूँजी हैं।

अज्ञानशत्रु

'एतत्' के आदर्श चार्मों में वसिष्ठता, उच्चता, अम्यता आदि देवगुण हमलिये हैं कि वे पूर्ण अनुपम हैं। उनका विषयभार, अग्राधीन होने के कारण बड़ा नहीं। हमारी चक्षुः हमलिये हैं कि वह भीखे लिये, तथा इसी प्रकार के अन्य चार्म द्वारा उन संकीर्ण सामाजिक नियमों को, जिन्होंने अनुपम को उच्च नीच के निम्न निम्न प्रकार के चंवरों में उलट कर मानवता की वसिष्ठता को परदृष्टि कर रक्खा है, किन्तु ओहों में अन्तर्गत किया है—

"यदि मैं सत्कार न होकर किसी विनम्र स्त्रिया के सामान दिगन्तय हस्त में एक अशुभित कृष्ण होगा और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ेगी—तब मैं के किसी स्त्रिया को मुगलित करके धीरे से उस धाम में चला दूँगा—जो इसका भीषण अंगारा इस विश्व में न मरना।"

"तुम ! यदि मेरा नाम न जानने हो तो "अनुपम" कह कर पुकारो। वह अज्ञानक सम्बंधन (सत्कार) मुझे न चढ़िये।"

हमारा ही नहीं, हमारे जीवन भर में मानवता ओहप्रयोग है, और हमारा पुत्र, हम अज्ञानशत्रु की अन्त को हमारे अंगों फिर मरना है।

हमारी सत्कार 'अज्ञान' के लोकोपा-वर्जित चार्मों को भी हम हमी निम्न प्रकारसे निम्न मरने हैं कि हमने मानवता का पूर्ण विहारा है। हमने वह हमलिये वह हैं—हमलिये अज्ञान है—कि वे मानवता के आदर्शों की पूर्णदृष्टि हैं। वह यदि कि, वे अज्ञान हैं, अन्त हममें हम आदर्शों की पूर्ण दृष्टि हमलिये हैं।

यदि ही हम जीवन का बहुत कुछ चरा का मानना है अज्ञान

हम यही चाहते हैं कि 'भजातशत्रु' पढ़कर पाठक हमारी समीक्षा की जाँच करें।

हाँ, इस नोट के समाप्त करने के पहले एक बात और कहनी है—

भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखे जाने वाले नाटकोंमें, उनके लेखक घटनाकाल के रहन सहन, चाल व्यवहार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनके पात्रोंके नाम भर तो ऐतिहासिक रहते हैं लेकिन अपने आचार व्यवहार से वे वर्तमान काल के मनुष्य—सो भी स्वदेश के नहीं, पश्चिम के—जान पड़ते हैं।

किन्तु, 'प्रसाद' जी इस दोष से प्रायः बिल्कुल बचे हैं। अभी तक हमारे पूर्वजों के सामाजिक जीवन की बहुत ही थोड़ी खोज हुई है। जो कुछ हुई है 'प्रसाद' जी अपने नाटकों में उसका पूर्ण उपयोग करने के भागी हैं।

काशी
२०-११-२२ }

कृष्णदास

कथा-मसंग

इतिहास में घटनाओं की साथ घुमराहटि होने देनी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें कोई नई घटना होती ही नहीं। किन्तु समाधान नई घटना की अधिपत्य में छिद होने की भासा लगती है। मावसमाज की कथना का भासार भास है, क्योंकि यह इच्छा-गति का विहास है। इन कथनाओं का, इच्छाओं का मूलमूल बहुत ही गूढ और अद्वितीय होता है। जब यह इच्छागति किसी व्यक्ति का चरित्र में केन्द्रित होकर अपना लक्ष्य का विकसित रूप धारण करती है, तब ही इतिहास की गति होती है। विश्व में जब तक कथना दृष्टा को नहीं प्राप्त होती, जब तक यह कथन-विकसन करती हुई घुमराहटि करती ही जाती है। समाज की अतिवृत्ति अत्यंत खोजवारी है। पूर्व कथना के पूर्व होने होने एक नई कथना समाज विशेष करने लगती है, और पूर्व कथना कुछ मात्र जब दूर कर, फिर होने के निम्न भासा खोज लगाने लगती है। इसका इतिहास का नवीन समाज मूल्ये लागता है। मावस समाज के इतिहास का नवीन समाज संक्रमण होता है।

मावस का ऐतिहासिक भास

मावस के भास होता है, क्योंकि समाज की बीह-वृत्तियों में अतिवृत्ति का मूल्यों की संश्लेषण में ही समाज भासता है। इसलिये

लोग वहीं से प्रामाणिक इतिहास मानते हैं। पौराणिक काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सभ्य-संसार में यड़ा भारी परिवर्तन किया। इसलिए हम कहेंगे कि भारत के ऐतिहासिक काल का प्रारंभ धन्य है, जिसने संसार में पशु-कीट-पतंग से लेकर इन्द्र तक के साम्बाध की शंख-ध्वनि की थी। केवल इसी कारण हमें, अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहास-काल का प्रारंभ मानने में गर्व होना चाहिये।

भारत-बुद्ध के पौराणिक काल के बाद इन्द्रप्रस्थ के पाण्डवों की प्रभुता कम होने पर बहुत दिनों तक कोई सम्राट् नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने-अपने देशों में शासन करती थीं। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों में ऐसे १६ राष्ट्रों का उल्लेख है, प्रायः उनका वर्णन भौगोलिक क्रम के अनुसार न होकर जातीयता के अनुसार है। उनके नाम हैं—अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुल, पांचाल, मत्स्य, क्षत्रसेन, अश्वक, अवन्तिक, गांधार और कांयोज।

उस काल में जिन लोगों से बौद्धों का सम्बन्ध हुआ है, इनमें उन्हीं का नाम है। जातक-कथाओं में शिवि, सौवीर, मद्र, चिराट् और उद्यान का भी नाम आया है। किन्तु उनकी प्रधानता नहीं है। उस समय जिन छोटी-से-छोटी जातियों, गणों और राष्ट्रों का सम्बन्ध बौद्ध-धर्म से हुआ, उन्हें प्रधानता दी गई; जैसे 'मल्ल' आदि।

अपनी-अपनी स्वतंत्र कुलीनता और आचार रखनेवाले इन राष्ट्रों में—कितनों ही में गण-तंत्र-शासन-प्रणाली भी प्रचलित थी—निसर्ग-नियमानुसार इनमें एकता, राजनीति के कारण नहीं, किन्तु एक—

वर्णन भी बौद्धों की प्राचीन कथाओं में बहुत मिलता है। विम्बसार की बड़ी रानी कोशला कोशल-नरेश प्रसेनजित् की बहन थी। वत्स-राष्ट्र की राजधानी कौशांबी थी, जिसका खँदहर जिला बाँदा (करई-सब-डिवीज़न) में यमुना के किनारे 'कोसम्' नाम से प्रसिद्ध है।

उदयन,

इसी कौशांबी का राजा था। इसने मगधराज और अवन्ती-नरेश, दोनों की राजकुमारियों से विवाह किया था। भारत के सहस्ररजनी-परिग्रह 'कथा-सरित्सागर' का नायक इसी का पुत्र नरवाहनदत्त है।

बृहत्कथा (कथा-सरित्सागर) के आदि आचार्य वररुचि हैं, जो कौशांबी में उत्पन्न हुए थे, और जिन्होंने मगध में नन्द का मंत्रित्व किया। उदयन के समकालीन अजातशत्रु के बाद उदयाश्व, नन्दिवर्द्धन और महानन्द नाम के तीन राजा मगध के सिंहासन पर बैठे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न, महानन्द के पुत्र, महापद्म ने नन्द-वंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि ८ नन्दों ने शासन किया (विष्णु पुराण, ४ अंश)। किसी के मत से महानन्द के बाद नव नन्दों ने राज्य किया। इसी 'नव नन्द' वाक्य के दो अर्थ हुए—नव नन्द (नवीन नन्द), तथा महापद्म और सुमाल्य आदि ९ नन्द। इनका राज्य-काल, विष्णु-पुराण के अनुसार १०० वर्ष है। नन्द के पहले राजाओं का राज्य-काल भी, पुराणों के अनुसार, लगभग १०० वर्ष होता है। कुंडि ने मुद्राराक्षस के उपोद्घात में अन्तिम नन्द का नाम धननन्द लिखा है। इसके बाद योगानन्द का मन्त्री वर-

द्विच पुत्रा । यदि कदा किसी हुई पुत्रों की गन्ना सही है, तो मायका होगा कि वरुन के पीछे, १०० वर्ष के बाद, वरुचि हुए । क्योंकि पुत्रों के अनुसार ३ सिधुवाग-वंश के और वरुचि-वंश के राजाओं का राज्य-काल हमना ही होगा है । महावंश और वीरों के अनुसार कात्यायन के बाद केवल वरुचि का नाम आता है । कात्यायन पुत्रों का महा-वंश मनु है । बौद्धमतानुसार इन सिधुवाग तथा वरुचि का मनुवंश राज्य-काल १०० वर्षों से कुछ ही अधिक होगा है । यदि हमें माना जाय तो वरुचि के १००-१२५ वर्ष छोटे वरुचि का होगा प्रमाणित होगा । कथामरि-त्तागर में हरी का नाम 'कात्यायन' भी है—“नाम्ना वरुचिः द्विच कात्यायन इति ज्ञु ।” इन विवरणों से पता चलता है कि वरुचि वरुचि के १२५-१०० वर्ष बाद हुए । विष्णु वरुचि की बीसवीं वरुचि की प्रामाण्य है ।

मनु वरुचि वरुचि से कात्यायन से बड़ी, और कात्यायन से गुणाज से । हमने ज्ञात होगा है कि वरुचि वरुचि के अन्तिम का अन्तिम है, तो मनुचि वरुचि अन्तिम वरुचि से मनुचि से बड़ी थी । क्योंकि वरुचि का वरुचि वरुचि अन्तिम से अन्तिम-वर्षों के बाद में वरुचि ही होगा । वरुचि मनु वरुचि को अन्तिम कात्यायन और गुणाज के माहम और बीसवीं अन्तिमों में विष्णु वरुचि मिला । महावंश दोनो के वरुचि वरुचि अन्तिम वरुचि से, अन्तिम वरुचि से, मनुचि से मिला । इस कात्यायन वरुचि के राज्य-काल में वरुचि वरुचि की वरुचि हुई । इन कात्यायन को अन्तिमों से वरुचि वरुचि मिला । और वरुचि वरुचि

कई नाटकों और उपाख्यानो में नायक बनाये गए । स्वप्न-वासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगंधरायण और रत्नावली में इन्हीं का चर्णन है । हर्षचरित में लिखा है—“नागवनविहारशौलं च मायामतंगांगाशिर्गता महासेनसैनिका चत्सपतिं न्ययसिपुः ।” मेघदूत में भी—“प्राप्यावंतीनुदयनकथाकोविदप्रा-मवृद्धान्” और “प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं चत्सराजोऽग्र जहे” इत्यादि है । इसी से इस कथा की सर्वलोकप्रियता समझी जा सकती है । वररुचि ने इस उपाख्यान-माला को सम्भवतः ३५० ई० पूर्व लिखा होगा । फिर सातवाहन नामक भांध्र-नरपति के राजपंडित गुणाध्य ने इसे गृहत्कथा नाम से ईसा की पहली शताब्दी में, लिखा । इस कथा का नायक नरवाहन-दत्त इसी उदयनका पुत्र था ।

यौद्धों के यहाँ इसके पिता का नाम ‘परंतप’ मिलता है । और, ‘मरन परिदीपित उदेनिवस्तु’ के नाम से एक आख्यायिका है । उसमें भी (जैसा कि कथासरित्सागर में) इसकी माता का गरुड़-वंश के पक्षी द्वारा उदयगिरि की गुफा में ले जाया जाना और वहाँ एक मुनि-कुमार का उसकी रक्षा और सेवा करना लिखा है । बहुत दिनों तक इसी प्रकार साथ रहते-रहते मुनि से उसका स्नेह हो गया और उसी से वह गर्भवती हुई । उदय-गिरि (कलिंग) की गुफा में जन्म होनेके कारण लड़के का नाम उदयन पड़ा । मुनि ने उसे हस्ती वश करने की विद्या और और भी कई सिद्धियाँ दीं । एक वीणा भी मिली (कथा-सरित्सागर के अनुसार वह, प्राण बचाने पर, नागराज ने दी थी) । वीणा द्वारा हाथियों और शबरो की बहुत सी सेना एकत्र करके उसने कौशांबी को

अर्जुन ने शापही पीढ़ी में उदयन का होना तो किसी प्रकार से ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि अर्जुन के समकालीन अराक्षस के पुत्र मरुदेव से लेकर, तिस्रुमाग-वंश से पहले के अराक्षस-वंश के २२ राजा मलय के सिंहासन पर बैठ चुके हैं। उनके बाद १२ तिस्रुमाग-वंश के हैं, जिसमें छठे और सातवें राजाओं के समकालीन उदयन थे। तो क्या बृह-वंश में, पहले ही समय में, भाग पीढ़ियों होंगई, जिसमें कि दूसरे राजा के राज-काल ही पीढ़ियों हुए। यह बात कदाचि मानने योग्य न होगी। संभवतः इसी विषयता को देखकर अंगिरसजी शास्त्री ने "अग्निमन्वीः संवत्सरा संवत्सराः" इत्यादि लिखा है। चौदावीं से न तो अभी विशेष ओज ही रहा है, और न विशेष सिंहासन इत्यादि ही मिले हैं। इसलिये संभव है, चौदावीं के राज-काल का उदयन अभी दुर्घा के गर्भ में ही रहा कहा हो।

कथा-अग्निमन्वीः उदयन की दो शक्तियों का नाम मिला है, तिस्रु पीढ़ी के राज-काल में ही उदयन की मन्वी राजा मागंवी का नाम भी मिला है।

मागंवी-काल और अराक्षसी,

इसमें से मागंवी-काल उदयन की शक्ति की, और अराक्षसी के अराक्षसी-काल की समझा जाय। इसी बात का नाम मन्वी भी था, क्योंकि अराक्षसी में "मन्वी-काल विदुर्गन्धर्व-कालाक्षर-काल" और किसी काल में "अराक्षसी विदुर्गन्धर्व-कालाक्षर-काल" के दो-तीन नाम मिलते हैं। अराक्षसी के काल में अराक्षसी के राजा का नाम मन्वी मिलता है और अराक्षसी-काल

के एक श्लोक से एक भ्रम और भी उत्पन्न होता है । वह यह है—
 “ततश्चंडमहासेनप्रद्योतौ पितरौ द्वयोः देव्योः...”। तो क्या प्रद्योत पद्मावती
 के पिता का नाम था? किन्तु कुछ लोग प्रद्योत और चंड-महासेन को एक ही
 मानते हैं । यही मत ठीक है, क्योंकि भास ने भी अवन्ती के राजा का नाम
 प्रद्योत ही लिखा है, और वासवदत्ता में उसने यह दिखाया है कि मगध-राज-
 कुमारी पद्मावती को यह अपने लिये चाहता था । जैकोशीने अपने वासवदत्ता
 के अनुवाद में अनुमान किया है कि यह प्रद्योत चंड-महासेन का पुत्र था;
 किन्तु जैसा कि प्राचीन राजाओं का देखा जाता है, यह अवश्य अवन्ती के
 राजा का मुख्य नाम था । उसका राज्य-नाम चंड-महासेन था । बौद्धों के
 लेख से प्रसेनजित् के एक दूसरे नाम ‘अग्निदत्त’ का भी पता लगता है ।
 विम्बसार श्रेणिक और अजातशत्रु कुणीक के नाम से भी विख्यात था ।

पद्मावती, उदयन की दूसरी रानी, के पिता के नाम में बड़ा मतभेद
 है । यह तो निर्विवाद है कि वह मगधराज की कन्या थी, क्योंकि कथा-
 सरित्सागर में भी यही लिखा है । किन्तु बौद्धों ने उसका नाम श्यामा-
 वती लिखा है, जिस पर, मार्गंधी के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर, उद-
 यन बहुत नाराज़ हो गए थे । श्यामावती के ऊपर, बौद्ध-धर्म का उपदेश
 सुनने के कारण, बहुत क्रुद्ध हुए । यहाँ तक कि उसे जला डालने का भी
 उपक्रम हुआ था । किन्तु भास की वासवदत्ता में इस रानी के भाई का
 नाम दर्शक लिखा है । पुराणों में भी अजातशत्रु के बाद दर्शक, हर्षक,
 दर्भक और वंशक इन कई नामों से अभिहित एक राजा का उल्लेख है ।
 किन्तु महावंश आदि बौद्ध-ग्रन्थों में केवल अजात के पुत्र उदयाश्व का ही

अज्ञानराज

नाम उद्दिष्ट, उद्दिष्टधर्म के स्वरूप में, मिलता है। मेरा अनुमान है कि पद्मावती अज्ञानराज की वदन थी, और अज्ञान में संभ्रमण (बुझाव के स्वरूप में) अज्ञान के दूसरे नाम, दशांश, का ही प्रयोग दिया है, ऐसा कि हमने अज्ञानराज के लिये प्रयोग नाम का प्रयोग दिया है।

यदि पद्मावती अज्ञानराज की कथा हुई, तो हम लोगों को भी विचारना होगा कि त्रिषु समय विष्णुसार मलय में, अर्थात् वृद्धावस्था में, राज्य कर रहा था, उस समय पद्मावती का विवाह हो चुका था। प्रगेन-त्रिषु उसका समयवर्ष था। वह विष्णुसार का राजा था। अज्ञानराज के अज्ञानराज का अज्ञान कथा देनी पड़ी थी, किन्तु स्वयं उसकी कथा, अज्ञानराज, के अज्ञान को वृद्ध देखाकर वदपन में विवाद करने का विचार दिया था।

“जावली राज्य पूर्व के न प्रगेनत्रिषु वृद्ध।

वृद्धावस्था में वृद्धावस्था वृद्धों का है।

× × × ×

मनुष्यराज का है अज्ञान राज्यवृद्धावस्था। इत्यादि

(मनुष्यराज राज्य वृद्ध)

अज्ञान वदपन अज्ञान में वृद्धावस्था, अज्ञान में वदपन कर, अज्ञाने वदपन के अज्ञान वृद्ध अज्ञान अज्ञानराज को, अज्ञान के लिये अज्ञाने वदपन, वृद्धों के वदपन। वह वृद्धावस्था के अज्ञान वृद्ध वदपन हो रहे थे।

हम वदपन के लिये है कि “अज्ञान में अज्ञान वदपन वदपन वदपन को वदपन

में, उदयन के राज्यकाल में व्यतीतिक्रिया और ४५ चातुर्मास्य करके उनका निर्वाण हुआ ।” ऐसा भी कहा जाता है कि—

अजातशत्रु के राज्याभिषेक के

नवें या आठवें वर्ष में गौतम का निर्वाण हुआ । इससे प्रतीत होता है कि गौतम के ३५ वें ३६ वें चातुर्मास्य के समय अजातशत्रु सिंहासन पर बैठा । तब तक वह विंशसार का प्रतिनिधि या युवराज-मात्र था । क्योंकि अजातने अपने पिता को अलग करके, प्रतिनिधि-रूप से, बहुत दिनों तक राज्यकार्य किया था, और इसी कारण गौतम ने राजगृह का जाना बन्द कर दिया था । ३५ वें चातुर्मास्य में ९ चातुर्मास्यों का समय घटा देने से निश्चय होता है कि अजात के सिंहासन पर बैठने के २६ वर्ष पहले उदयन ने पद्मावती और वासवदत्ता से विवाह कर लिया था, और वह एक स्वतंत्र शक्तिशाली नरेश था । इन बातों के देखने से यही ठीक जँचता है कि पद्मावती अजातशत्रु की ही बड़ी बहन थी, और पद्मावती को अजातशत्रु से बड़ी मानने के लिये यह विवरण यथेष्ट है । दर्शक का उल्लेख पुराणों में मिलता है, और भास ने भी अपने नाटक में वही नाम लिखा है । किंतु समय का व्यवधान देखने से—और बौद्धों के यहाँ उसका नाम न मिलने के कारण—यही अनुमान होता है कि प्रायः जैसे एक ही राजा को बौद्ध, जैन और पौराणिक लोग भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं, वैसे ही दर्शक, कुणीक और अजातशत्रु ये नाम एक ही व्यक्ति के हैं । जैसे विंशसार के लिये विंध्यसेन और श्रेणिक ये दो नाम और भी मिलते हैं । किन्तु प्रोफ़ेसर गेजर अपने महावंश के अनुवाद में बड़ी दृढ़ता से अजातशत्रु और उदयाश्व

के राज्य में इसका नाम के द्विती राजा के होने का विशेष करने हैं। कथा-
सहितान्त के अनुसार प्रयोग ही पद्मावती के विना का नाम था। इन
गद्य कालों के देखने में पदी अनुमान होता है कि पद्मावती विजयार की
कही राधा कोणाल (पालवी) के गर्भ में उत्पन्न मंगलराजकुमारी थी।

अपीम उच्चनियोल राष्ट्र मंगय.

शिवने कीर्तियों के बाद महात्म्य वाचस्पत्य आर्य में स्थापित किया, इस
काष्ठ की वाचा का क्षेत्र है । अथवा को कोष्ठा का दिया हुआ, राज-
पुष्पा कोष्ठा (वाचसी) के दोष में वाचसी का प्रतीक था, शिवने
शिवने अथवा के महात्म्य वाचस्पत्य और प्रत्येकान्त में कुछ हुआ । इस
कुछ का अर्थ, वाचसी प्रतीक के अर्थ-वाच अर्थ का अर्थ था । 'इतिप्रतीक'
'वाचसी-कुछ' और 'वाचसी-कुछ अर्थ' की वाचसी का इसी वाचा में
अर्थ-वाच है ।

[illegible]

के लिये और अपनी बात भी रखने के लिये, अजातशत्रु से अपनी दुहिता वाजिराकुमारी का ब्याह कर दिया ।

अजातशत्रु के हाथ से उसके पिता विम्बसार की हत्या होने का उल्लेख भी मिलता है । 'धुस-जातक-कथा' अजातशत्रु का अपने पिता से राज्य छीन लेने के सम्बन्ध में, भविष्यद्वाणी के रूप से कही गई है । परन्तु युद्धघोष ने विम्बसार का बहुत दिन तक अधिकारच्युत होकर बंदी की अवस्था में रहना लिखा है । और, जब अजातशत्रु को पुत्र हुआ तब उसे 'पितृक स्नेह' का मूल्य समझ में आया । उस समय वह स्वयं पिता को कारागार से मुक्त करने के लिये गया, किन्तु उस समय वहाँ महाराज विम्बसार की अन्तिम अवस्था थी । इस तरह से भी पितृहत्या का कलङ्क उस पर आरोपित किया जाता है । किन्तु कई विद्वानों के मत से इसमें सन्देह है कि अजात ने वास्तव में पिता को बन्दी बनाया, या मार डाला था । उस काल की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि विम्बसार पर-

गौतम बुद्ध

का अधिक प्रभाव पड़ा था । उसने अपने पुत्र का उद्धृत स्वभाव देख कर जो कि गौतम के विरोधी देवदत्त के प्रभाव में विशेष रहता था, स्वयं सिंहासन छोड़ दिया होगा ।

इसका कारण भी है । अजातशत्रु की माता छलना, वैशाली के राज-वंश की थी, जो जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की निकट सम्बन्धिनी थी । वैशाली की वृज जाति (लिच्छवी) अपने गोत्र के महावीर स्वामी का धर्म विशेष रूप से मानती थी । छलना का झुकाव अपने

की ओर खिंच था। दूसरे देवदत्त, जिसके बारे में कहा जाता है कि
उसने गौतमबुद्ध के मार डालने का एक भारी चतुर्धन रचा था, और
द्वितीय अज्ञान को अपने प्रभाव में लाकर राजसूय से भी उसमें महा-
बला केना जाता था—बादला था कि गौतम ने वह अहिंसा की चेष्टा
क्या की। ॥ अज्ञान के जाने को कि 'जैन-धर्म' में मिलती हो। और
उसके इन दोषों में राजसूय की महानुभूति का भी मिश्रण समाविष्ट
हो था।

गौतम ने बुद्ध ने इन, एक और खिंच दू-टी सौत प्रभाव की
दिशाओं का विशेष दिशा था। खिंचाव में सौत की मिले गो खिंच नहीं
था। किन्तु देवदत्त वह बाइना था कि 'संघ' ॥ वह नियम हो जाय कि
होनी भिन्न सौत का ही नहीं।' गौतम ने केनी आता नहीं अज्ञान की।
देवदत्त की धर्म के जाने अज्ञान की महानुभूति मिली और बड़ी सारी
महा विचारों के जाने, जो बुद्ध के साथ थे, सानुता की जाने जाती।

इसी दृष्टिकोण को देख कर विचारों ने स्वयं विचारों में लाना दिया
होता और राजसूय के अज्ञान से अज्ञान को अपने दिना पर गौतम
उसके का साथ हुआ होता और विचार विचारों की भी आसन्नता रही
होती। देवदत्त की अज्ञान के जाने अज्ञान को वह बहुत-से का विचारों
अज्ञान हुआ। अज्ञान ही ही अज्ञान की अज्ञानों का कीदृशविषय
के जात की गौतम वनन दिना है।

समाप्तम् अज्ञानम्

१—अज्ञान-अज्ञान के जाने के अज्ञान—अज्ञान का साथ दिना

था। विरुद्धक की माता का नाम जातकों में वासभा खत्तिया मिलता है। (उसीका कल्पित नाम शक्तिमती है) प्रसेनजित् अजात के पास सहायता के लिये राजगृह आया था; किंतु, 'भद्रसाल-जातक' में इसका विस्तृत विवरण मिलता है कि विद्रोही विरुद्धक गौतम के कहने पर फिर से अपनी पूर्व मर्यादा पर अपने पिता के द्वारा अधिष्ठित हुआ।

इसने कपिलवस्तु का जनसंहार इसलिए चिढ़ कर किया था कि शाक्यों ने धोखा देकर प्रसेनजित् को शाक्यकुमारी के बदले एक दासी-कुमारी से व्याह दिया था। जिससे दासी-संतान होने के कारण विरुद्धक को अपने पिता के द्वारा अपदस्थ होना पड़ा था। शाक्यों के संहार के कारण बौद्धों ने इसे भी क्रूरता का अवतार अंकित किया है। 'भद्रसाल-कथा' के सम्बन्ध में जातक में कोशल सेनापति बंधुल और उसकी स्त्री मल्लिका का विदाद वर्णन है। इस बंधुल के पराक्रम से भीत होकर कोशल-नरेश ने इसकी हत्या करा डाली थी। और इसका बदला लेने के लिए, उसके भागिनेय दीर्घकारायण ने प्रसेनजित् से राज्यचिह्न लेकर क्रूर विरुद्धक को कोशल के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

प्रसेन और विरुद्धक सम्बन्धिनी घटना का वर्णन अवदानकल्पलता में भी मिलता है। विम्वसार और प्रसेन दोनों के ही पुत्र विद्रोही थे। और तत्कालीन धर्म के उलट-फेर में गौतम के विरोधी थे। इसीलिए इनका क्रूरतापूर्ण अतिरंजित चित्र बौद्ध इतिहास में मिलता है। उस काल के राष्ट्रों के उलट-फेर में धर्म के दुराग्रह ने भी सम्भवतः बहुत सा भाग लिया था।

अज्ञानगुरु

माताजी, जिसके उगड़ने से प्रमाणी पर उदयन बहुत भारमुक्त हुए थे, वह माया-कथा भी, जिसमें उनके पिता गौतम ने स्थापना करने थे, और गौतम ने उसका निरन्तर किया था। इसी माताजी की, और औरों के सहित में बलि आश्रम (अज्ञानगुरु) की, हमने कल्पना द्वारा एक में मिलने का साधन दिया है। अज्ञानगुरु पवित्र और बेदा होने का भी गौतम के द्वारा अज्ञान काय में पवित्र की गई। (कुछ लोग औरों की इसी का पुत्र मानते हैं।)

निष्कर्षों का निष्कर्ष करके गौतम ने उसकी भिन्न स्वीकार की थी। औरों की स्थापना भी बेदा आश्रमों, माताजी और इस तरह की स्थापना के का एक संसार कुछ विभिन्न भी होगा किन्तु पवित्र का विचार और औरों का ज्ञान ही हमका उद्देश्य है।

अज्ञानगुरु

अज्ञानगुरु के लक्षण में अज्ञान, माया-कथा में पवित्र हुआ। अज्ञान का और बेदा की का हमने उद्देश्य दिया था। और अज्ञान का निरन्तर अज्ञान में रहने का ही हो गया। अज्ञान की स्थापना दिया था। अज्ञान का ही अज्ञान का अज्ञान का अज्ञान हुआ।

अज्ञान के अज्ञान का अज्ञान और ही अज्ञान हुआ। अज्ञान की स्थापना का अज्ञान का अज्ञान की स्थापना है। अज्ञानगुरु ने अज्ञान का अज्ञान का अज्ञान का अज्ञान दिया था।

पुरुष-पात्र

विम्बसार—मगध का सम्राट्

अजातशत्रु (कुलीक)—मगध का राजकुमार

उदयन—कौशाम्बी का राजा, मगधसम्राट् का जामाता

प्रसेनजित्—कोशल का राजा

विरुद्धक (शैलेन्द्र)—कोशल का राजकुमार

गौतम—बुद्धदेव

सारिपुत्र—सद्धर्म के आचार्य

आनन्द—गौतम के शिष्य

देवदत्त (भिक्षु)—गौतमबुद्ध का प्रतिद्वन्द्वी

समुद्रदत्त—देवदत्त का शिष्य

जीवक—मगध का राजवैद्य

वसन्तक—उदयन का विदूषक

बन्धुल—कोशल का सेनापति

सुदत्त—कोशल का कोषाध्यक्ष

दीर्घकारायण—सेनापति बन्धुल का भाजा, सहकारी सेनापति

लुब्धक—शिकारी

काशी का दरुड नायक, अमात्य, दूत, दैव

और अनुचरगण

श्री-पात्र

- धामनी—मन्त्रमन्त्र की बड़ी शक्ती
 दुयना— ॥ छोटी शक्ती और राजमाना
 पद्मावती—मन्त्र की राजकुमारी,
 मातङ्गिणी (श्यामा)—भद्रवती, } उदयन की शक्तियाँ
 धामनी—उदयन की बड़ी शक्ती }
 शक्तिमती (महाशक्ति)—राजकुमारी, शोभा की शक्ती
 शक्तिमती—शोभा की शक्ति
 धामनी—शोभा की राजकुमारी
 शक्तिमती—शक्ति
 शक्तिमती, शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति, शक्ति

श्री:

अजातशत्रु

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—प्रकोष्ठ

(राजकुमार अजातशत्रु, पद्मावती, समुद्रदत्त और शिकारी लुब्धक)

अजात०—क्यों रे लुब्धक ! आज तू मृगशावक नहीं लाया ! मेरा चित्रक अब किससे खेलेगा ?

समुद्र०—कुमार ! यह बड़ा दुष्ट हो गया है । आज कई दिनों से यह मेरी बात सुनता ही नहीं ।

लुब्धक—कुमार ! हम तो आज्ञाकारी अनुचर हैं । आज हमने जब एक मृगशावक को पकड़ा तो उसकी माता ने ऐसी करुणाभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा कि उसे छोड़ देते ही बना । अपराध क्षमा हो ।

अजात०—हाँ—तो फिर मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ता हूँ । समुद्र ! ला तो मेरा कोड़ा ।

समुद्र०—(कोड़ा लाकर देता है)—लीजिये । इसकी अच्छी पूजा कीजिए ।

पद्मावती—(कोड़ा पकड़ कर)—भाई कुर्मीक ! तुम इतने दिनों में ही बड़े निन्दुर हो गये ! भला तब क्यों मारते हो ?

अज्ञान०—तबने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी ?

पद्मा०—तबने मैंने ही क्या किया था, वगैरा क्या अपराध ?

समुद्र०—(धीरे से)—तभी तो तबने आज कल गर्व हो गया है । किसी की बात नहीं सुनता ।

अज्ञान०—तो इस प्रकार तुम तबने मेरा अवमान करना मित्रता हो ।

पद्मा०—यह मेरा कर्तव्य है कि तुमको अभिरागी से बचाऊँ और अच्छी बातें मित्रता हों । जा रे मुन्धक, जा, बला जा । कुमार अब मुनवा लेजो जायें तो उनहीं सेवा करना । निरीह लोगों को पकड़ कर निन्दना मिलाने में गदाधक न होना ।

अज्ञान०—यह तुम्हारी बड़ावही मैं मदन नहीं कर सकता ।

पद्मा०—मानवी गृष्टि कर्मों के निवे दे, पों तो कर्मों के नियुक्त हिय वतु, जगत् में क्या कम है ?

समुद्र०—देवी ! कर्मों और कर्मों के निवे तो मित्रों जगत् में हैं ही, किन्तु पुरुष भी क्या नहीं हो जाय ?

पद्मा०—तुम नहीं समुद्र ! क्या कर्मों ही पुरुषों का परिचय है ? मेरी बड़ावही भी भली जगत् को अच्छी नहीं बनाती ।

(जगत् का दर्शन)

अज्ञान०—पद्मावती ! यह तुम्हारा अधिकार है । कुर्मीक का इतर कोई कोई बातों में कोई देना, उसे दया देना, बगैरा कर्मों के निवे देना है ।

पद्मा०—माँ, यह क्या कह रही हो ! कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुखों की आशा है, मैं उसे कर्त्तव्य क्यों न बताऊँ ? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फँसते देखूँ और कुछ न कहूँ ।

छलना—तो क्या तुम उसे वांदा और डरपोक बनाना चाहती हो ? क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदण्ड ग्रहण कर सकता है ?

पद्मा०—माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशासित होता है ? ऐसा विपवृत्त लगाना क्या ठीक होगा ? अभी कुणीक किशोर है; यही समय सुशिक्षा का है । बच्चों का हृदय कोमल थाला है, चाहे इसमें कटीली माड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे ।

कुणीक—फिर तुमने मेरी आज्ञा क्यों भङ्ग होने दी ? क्या दूसरे अनुचर इसी प्रकार मेरी आज्ञा का तिरस्कार करने का साहस नहीं करेंगे ?

छलना—यह कैसी बात ?

कुणीक—मेरे चित्रक के लिये जो मृग आता था उसे ले आने के लिये लुब्धक रोक दिया गया । आज वह कैसे खेलेगा ?

छलना—पद्मा ! क्या तू इसकी मंगल-कामना करती है ! इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुकों की भोंड़ी सीख है । जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा, वह भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ सकता । राजा का परम धर्म न्याय है, वह दण्ड के आधार पर है । क्या तुम्हें नहीं मालूम कि वह भी हिंसामूलक है ?

पद्मा०—माँ ! क्षमा हो । मेरी समझ में तो मनुष्य होना, राजा होने से अच्छा है ।

छलना—तू कुटिलता की मूर्ति है । कुणीक को अयोग्य

दूसरा दरज

ज्ञान—राजकीय मकोष्ठ

(अज्ञातराज विष्णुवार गुरुजी के दृष्टि आता ही आता कुछ विचार कर रहे हैं)

✓ म० विष्णुवार—आहा, जीवन की अनुभूतिपूर्णता देख कर भी मानव किन्ती गहरी जीव देना चाहता है । आचारा के नीति पत्र पर कबलन अक्षरों में लिखे हुए अक्षरों के लेख जब धीरे धीरे लोप होने लगते हैं तभी तो अनुभव प्रमाण समझने लगता है; और जीवन-संसार में प्रवृत्त होकर अनेक अक्षरों का लोप करता है । और कबल अक्षरों के अक्षरों की शुरुआत में से आकर अक्षरों की शान्ति-मय, अक्षरों का अक्षर का विचार समझने का प्रयत्न करती है । किन्तु वह कब मानता है ? अनुभव अर्थ अनुभव की आकांक्षा में मानता है, अक्षरों की, किन्तु गुरु परिरिति में उसे अक्षरों की गहरी होना । जीव में जीव अक्षरों ही अक्षरों है । आदे फिर गिरे मो मो क्या ?

ज्ञान—(प्रवेश कर के)—और जीव के लेख नहीं रहे । वे अक्षरों का अक्षरों की गहरी गहरी ? अक्षरों का अक्षरों का अक्षरों की गहरी ?

म० विष्णुवार—(जीव कर)—जीव, अक्षरों ?

ज्ञान—हाँ, अक्षरों ! मैं ही हूँ ।

म० विष्णुवार—अक्षरों का मैं ही अक्षरों का ?

ज्ञान—अक्षरों का मैं ही अक्षरों की अक्षरों की अक्षरों

देती है। महाराज ! इसकी बड़ी चाह है। महत्त्व का यह अर्थ नहीं है कि सब को क्षुद्र समझे।

विन्वसार—तब।

छलना—यही कि मैं छोटी हूँ इसीलिए पटरानी नहीं हो सकी, और वह मुझे इसी बात पर अपदस्थ किया चाहती हैं।

विन्वसार—छलना ! यह क्या ! तुम तो राजमाता हो। देवी वासवी के लिए थोड़ा सा भी सम्मान कर लेना तुहें विशेष नीचा नहीं बना सकता—उसने कभी तुम्हारी अवहेलना भी तो नहीं की।

छलना—इन भुलावों में मैं नहीं आ सकती। महाराज ! मेरी धमनियों में लिच्छिवी रक्त बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। यह नीरव अपमान, यह सांकेतिक घृणा, मुझे सहन नहीं, और जब कि खुलकर अजात का अपकार किया जा रहा है तब तो—

विन्वसार—ठहरो ! तुम्हारा यह अभियोग अन्याय पूर्ण है। क्या इसी कारण तो बेटो पद्मावती नहीं चली गई ? क्या इसी कारण तो अजात मेरी भी आज्ञा सुनने में आनाकानी करने नहीं लगा है ? यह कैसा उत्पात मचाया चाहती हो ?

छलना—मैं उत्पात रोकना चाहती हूँ। आपको अजात के लिये युवराज्याभिषेक की घोषणा आज ही करनी पड़ेगी।

वासवी—(प्रवेश कर के)—नाथ, मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं चाहती हूँ कि यह उत्सव देख कर और आपकी आज्ञा लेकर मैं कोशल जाऊँ। सुदत्त आज आया है, भाई ने मुझे बुलाया है।

विन्वसार—कौन, देवी वासवी !

अमानराज

मून ब्यक्त है। हृदय में मित्रता यह पुमता है, जवनी ब्याह
नदी। बाह्यमंवन विश्वनेत्रों की पहनी मोड़ी है। अस्तु, यद्यपि मैं
तुममें एक काम की बात कदा बोझा हूँ। क्या तुम मानोगे—
क्यों मरानाहीं ?

विश्वनाथ—अबश्य ।

गीतम—तुम आज ही अमानराज की पुत्रगात्र बना दो।
और इस भीमल भोग में कुछ विनाश हो, क्यों कुर्क ! तुम
गम्य का बाधे अग्नि-वशिष्ठ की सहायता में जाता मरोगे ?

कुर्क—क्यों मरी। गिता जी यदि आज्ञा दें।

गीतम—यह सोच, कहीं यह सोच हो, यदि एक अविद्यारी
अन्ति की भीर दिया ज्ञान की मानव की समझ ही होना चाहिये।
क्योंकि भगवत्, इसमें कमी न कमी तुम हटावे जायेंगे, गीता
कि बिन्दु मात्र का निदम है। फिर, यदि तुम कदापि मेरे कर्म भोग
कर होइ हो तो इसमें क्या दुःख—

विश्वनाथ—देखना होनी आदिये मराना ! यह कहा
तुमका कार्य है। मराना एक समयकी की मराने कदापि है। तुम
मेरे देना चाहता है।

गीतम—(विचार)—जीव है। किन्तु, क्या कार्य है यह
मेरे शरीर में ही आज यह विद्वत् प्रमाण मरी दिया कि यह
कार्य है मराने है। यह कदापि तुमका अन्ति-वशिष्ठ की आज्ञा
कराने का कहा है। भगवत् : भगवत् हो, इस मराने-वशिष्ठ की
अन्ति-वशिष्ठ मराने मेरे विचार हो।

पहला अंक

वासवी—भगवन् ! हम लोगों को तो एक छोटा सा उपवन
पर्याप्त है । मैं वहीं नाय के साथ रह कर सेवा कर सकूँगी ।

विश्वसार—तब जैसी आपकी आज्ञा । (कंचुकी से) राज-
परिषद् , सभागृह में एकत्र हो । कञ्चुकी ! शीघ्रता करो ।

(कंचुकी का प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

तीसरा दृश्य

स्नान—पथ

(समुद्रदेव और देवदेव)

देवदेव—क्यों मैं तेरी बाण्यवादी में प्रसन्न हूँ। हाँ, तू
कदा हुआ—कदा अज्ञान को राजनितक हो गया ?

समुद्रदेव—शुभ मुहूर्त में भिरामन पर पैटना ही रोग है
और परिशु का बाण्यों को जननी देना रोग में होने लगा। कुश-
मन्त्र में राजकुमार ने बाण्यारम्भ दिया है, किन्तु गौतम यदि न
बाण्यों को यह काम समझता मैं न हो सकता।

देवदेव—तू कभी दफोगले जाने की प्रशंसा ? अरे समुद्र,
यदि मैं इसकी चेष्टा न करता तो यह सब कुछ न होता—
तिथिहीन-मृगादि में इसका मनोबल क्यों कि वह तो अद-
भासी ?

सं. २५—तो राजकुमार ने आरम्भ किया है, क्योंकि
कभी बाण्यों की मददगार विष्णुभाष मन्त्रवक्ता अदनी मर्दान
कुली में बने होने लगे। अब यह राज्य केवल राजमाता और
सुवर्गा के हाथ में है। जननी इच्छा है कि आगे समुद्रदेव को
राज्य हस्तगत होना।

देवदेव—(इस वक्ता हुआ)—एक संकट काय हुआ विष्णु
में करी होगा। तू भी संकोचका के जिने को कुछ करना ही
सकता है।

सं. २६—किन्तु सुवर्गा, सुवर्गा है कदा कदा, कदा

संग रहने में भी डर मालूम पड़ता है। बिना आपकी छाया के मैं तो नहीं रह सकता।

देवदत्त—वत्स समुद्र ! तुम नहीं जानते कि कितना गुरुतर काम तुम्हारे हाथ में है। मगधराष्ट्र का उद्धार इस साधु के हाथों से करना ही होगा। जब राना ही उसका अनुयायी है फिर जनता क्यों न भाड़ में जायगी। यह गौतम बड़ा ही कपट मुनि है। देखते नहीं हो कि यह कितना प्रभावशाली होता जा रहा है। नहीं तो मुझे इन मगड़ों से क्या काम।

स० दत्त—तब क्या आज्ञा है ?

देवदत्त—गौतम का प्रभाव मगध पर से तब तक नहीं हटेगा जब तक कि विम्बसार राजगृह से दूर न जायगा। यह राष्ट्र का शत्रु गौतम समग्र जम्बूद्वीप को भिक्षु बनाना चाहता है और आप उनका मुखिया। इस तरह जम्बूद्वीप भर पर एक दूसरे रूप में शासन करना चाहता है।

जीवक—(सहसा प्रवेश करके)—आप विरक्त हैं और मैं गृही। किन्तु, जितना मैंने आपके मुख से अकस्मात् सुना है वही पर्याप्त है कि मैं कुछ आपको रोक कर कहूँ। सहभेद करके आपने नियम तोड़ा है, उसी तरह राष्ट्र भेद कर के क्या देश का नाश कराया चाहते हैं ?

देवदत्त—यह पुरानी मण्डली का गुप्तचर है। समुद्र ! युवराज से कहो कि इसका उपाय करें। यह विद्रोही है ! इसका मुख बन्द होना चाहिये।

जीवक—ठहरो, मुझे कह लेने दो। मैं ऐसा डरपोक नह

हूँ कि जो बात तुम से कहनी है वह मैं दूसरों से कहूँ । मैं भी राजकुल का प्राचीन सेवक हूँ । तुम लोगों की वह वृत्तमन्त्रणा अच्छी प्रकार समझ रहा हूँ । इसका परिणाम-कभी भी अच्छा नहीं । मायादान, मगध का अधःपतन—दूर नहीं है ।

(जाता है)

सुराज—(प्रवेश करके)—आपें समुद्रदत्त जी ! कहिये, मेरे, जाने का प्रबन्ध तो ठीक हो गया है न ? कोशल शीघ्र पहुँच जाना मेरे लिये आवश्यक है । महागानों तो अब जायेंगी नहीं, क्योंकि मगधनरेश ने वानप्रस्थ आश्रम का अवलम्बन लिया है, फिर मैं टहर कर क्या करूँ ?

ग० दत्त—किन्तु सुवराज ने तो अभी आरक्षो टहरने के लिये कहा है ।

सुराज—नहीं, मुझे एक रात्र भी वहाँ टहरना अनुचित जान पड़ता है । मैं इमीतिवें आरक्षो शोक कर भिन्ना हूँ कि शुभे वरों का समाचार कोशल में शीघ्र पहुँचाना होगा । इमीतिवें सुवराज में मेरी ओर मे चला आता हैना ।

(जाता है)

देवदत्त—अबो, सुवराज के बात आये ।

(दोनों आते हैं)

(दर-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

स्थान—उपवन

(महाराज विम्बसार और महारानी वासवी)

विम्बसार—देवी, तुम कुछ समझती हो कि मनुष्य के लिये एक पुत्र का होना क्यों इतना आवश्यक समझा गया है ।

वासवी—नाथ ! मैं तो समझती हूँ कि वात्सल्य नाम का जो पुनीत स्नेह है उसी के पोषण के लिये ।

विम्बसार—स्नेहमयी ! वह भी हो सकता है, किन्तु मेरे विचार में कोई और ही बात आती है ।

वासवी—वह क्या नाथ ?

विम्बसार—संसारी को त्याग, तितिक्षा या विराग होने के लिये यह पहला और सहज साधन है । क्योंकि मनुष्य अपनी ही ही आत्मा का भोग उसे भी समझता है । पुत्र को समस्त अधिकार देने में और वीतराग हो जाने से, असंतोष नहीं रह जाता । इसे बड़े-बड़े लोभी भी कर सकते हैं ।

वासवी—मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आपको अधिकार से वंचित होने का दुःख नहीं ।

विम्बसार—दुःख तो नहीं देवी ! फिर भी इस कुणीक के व्यवहार से अपने अधिकार का ध्यान हो जाता है । तुम्हें विश्वास हो या न हो, किन्तु कभी-कभी याचकों का लौट जाना मेरी वेदना का कारण होता है ।

वासवी—तो नाथ ! जो आपका है वही न राज्य का है, उसी

अज्ञानशत्रु

आत्मबल या प्रतिभा किसी की प्रशंसा के बल से विश्व में नहीं होती है। अथवा अवनम्य वह स्वयं है, इसमें नहीं इन्दा व अनिष्टा क्या है। यह दिव्य शक्ति स्वयं स्वकी आँखों की आकृति का रही है। देवदत्त का विरोध केवल अपने नमस्ति दे रहेगा।

जीवक—देव ! फिर भी जो ईश्वर की पट्टी आँखों पर लगाए हैं वे इसे नहीं देख सकते। अतः, अब मुझे क्या आता है, क्योंकि यह जीवन अब आनंदी की सेवा के लिये समर्पण है।

वामनी—जीवक, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी मरुति में चिरमंगिनी रहे। महाराज की अब स्वयं प्रीति की है। अब कारी प्रान्त का राजा, जो हमारा प्रिय है, हमें लाने का प्रयोग करना होगा। साथ साथ ही हम लोग किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखेंगे।

जीवक—देवी ! इसके पहले कि हम और कोई कार्य करें, हमारा बीरगवी जाना एक बार आश्चर्य है।

विष्णु—नहीं। जीवक ! मुझे किसी की महारणा की आश्चर्य नहीं, अब वह राष्ट्रीय संग्रह मुझे नहीं रखता।

वामनी—अब भी आश्चर्य विष्णु नहीं करनी होगी। अभी हम लोगों में यह त्याग, मानदमान रहित आर्ष भक्ति नहीं था। फिर, जो शत्रु में भी अति प्रीति व्यवहार करना आता है, उसकी भिक्षा का अब सम्बन्ध करने को हरव नहीं करना।

जीवक—जो मरुत कोणन का बुद्धि है और बीरगवी में भी

पहला अंक

यह समाचार पहुँचना आवश्यक है। इसीलिये मैं कहता था और कोई बात नहीं। काशी के दरुडनायक से भी मिलता जाऊँगा।

विम्बसार—जैसी तुम लोगों की इच्छा।

वासवी—नाथ ! मैं आपसे छिपाती थी, फिर भी कहना ही पड़ा कि हम लोग वानप्रस्थ आश्रम में भी स्वतन्त्र नहीं रखे गये हैं।

विम्बसार—(निश्वास लेकर)—ऐसा !—तो कुछ हो—

(गाते हुए भिक्षुकों का प्रवेश)

न धरो कह कर इसको 'अपना'।

यह दो दिन का है सपना ॥ न धरो.....

वैभव का बरसाती नाला, भरा पहाड़ी क्षरणा।

बहो, बहाओ नहीं और को, जिससे पड़े कल्पना ॥ न धरो० ॥

दुखियों का कुछ आँस पोंछ लो, पड़े न आहें भरना।

लोभ छोड़कर हो उदार, बस, एक उसी को जपना ॥ न धरो० ॥

विम्बसार—देवी, इन्हें कुछ दो—

वासवी—और तो कुछ नहीं है—(कंकड़ उतार कर देती है)—

प्रभु ! इन स्वर्ण और रत्नों का आँखों पर बड़ा रङ्ग रहता है, जिससे मनुष्य अपना अस्थि चर्म का शरीर तक नहीं देखने पाता—

(भिखारी जाते हैं)

(पटाक्षेप)

आत्मपुत्र या प्रतिमा किमी की प्रशंसा के बन से
होती है। अपना अवनम्य वह स्वयं है, हममें मेरी इस
कथा है। यह दिव्य उचोति मयः मयकी आँखों को
रहो है। देवदत्त का विशेष केवल नाममें जगति में
तीन...

जीवन्—देव ! फिर भी जो ईश की पट्टी है वे इसे नहीं देख सकते । आगु, अब मुझे क्योंकि यह जीवन अब आगदी की सेवा के नि

वासरी—श्रीयक, मुन्दाग कल्याण है
मुन्दागो पिरमंगिनी रहे । मदागत को क
आवरयकता है । अगः कारी प्राप्ति क
प्राप्त है, जो साने का उपयोग करना होगा
हम लोग किमी प्रकार का सम्बन्ध न र

! इगके मध्ये कि

॥ श्री गुरुभ्यो नमः ॥

पहला अंक

भी संसार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा, देखूँ तो कौन खड़ा रहता है।

(नवीना का पान पात्र लेकर प्रवेश)

नवीना—महादेवी की जय हो !

मागन्धी—तुम्हें भी बुलाना होगा क्यों ? महाराज नहीं आते हैं तो तुम सब महारानी हो गई हो न ?

नवीना—दामो को आज्ञा मिलनी चाहिये। यह तो प्रतिक्षण श्री चरणों में रहती है। (पान कराती है)

मागन्धी—महाराज आज आवेंगे कि नहीं, इसका पता लगा कर शीघ्र आओ—

(नवीना जाती है)

मागन्धी—(आपही आप गाती है)—

अली ने क्यों भला भवहेला की।

चम्पक कली खिली सौरभ से उपा मनोहर बेला की ॥

विरस दिवस; मन बहलाने को मलयज से फिर खेला की।

अली ने क्यों भला भवहेला की ॥

नवीना—(प्रवेश करके)—महाराज आया ही चाहते हैं।

मागन्धी—अच्छा। आज मुझे बड़ा काम करना है नवीना !
नर्तकियों को शीघ्र बुला—मेरी वेशभूषा भी ठीक है न—देख तो—

नवीना—वाह स्वामिनी, तुम्हें वेशभूषा की क्या आवश्यकता है—यह सहज सुन्दर रूप बनावटों से और भी बिगड़ जायगा।

मागन्धी—(हँसकर)—अच्छा अच्छा रहने दे और

पाँचवाँ दृश्य

(बीताभी में मागम्भी का सगिर)

१. मागम्भी—(स्थाणु)—इस रूप का इतना अपमान ! तो भी एक दृष्टि भिक्षु के हाथ ! मुझमें क्या करने बर्मादार किया ! यहाँ मैं राजगान्धी हूँ, फिर भी वह स्वाज्ञा न गई; यहाँ रूप का गौरव हुआ तो धन के अभाव में दृष्टि कम्पा होने के अपमान की सम्प्रदाय में विगत रही हूँ । अगला डमका भी प्रतिशोध लूगी, अथ वही मेरा धन हुआ । बदयन राता है तो मैं भी अपने हृदय की शक्ती हूँ । दिग्गज होगी कि विविधों का कर मचनी हूँ । चीन है ।

(एक शक्ती का प्रवेश)

शक्ती—महादेवी ! क्या आता है ?

मागम्भी—गुड़ी न गई थी गौतम का समाचार लाने, वह आतङ्क्य कष्टावली के सगिर में निधा करने आया है न ?

शक्ती—क्या है शक्तिनी ! वह तो भोगे मरण में बैठ कर रह रहा बताया है । महागज भी वहीं बैठ कर बगड़ी बभूना सुनने है । क्या आदर करते हैं ।

मागम्भी—शक्ती बड़े दिने में डगर मरी आने है । अगला, जेठिपो का भोग सुता लः । नरोत्तम में भी कर दे दि वह हीन आने और अन्तर्गत होती आने ।

(शक्ती का प्रस्थान)

मागम्भी—(अन्तर्गत)—नरोत्तम ! वह सुनारी विविधा गूढ़ें करी से आगती ! वह सुनने कभी नहीं विजान कि सुनारी विविध

भी संसार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा, देखूँ तो कौन खड़ा रहता है।

(नवीना का पान पात्र लेकर प्रवेश)

नवीना—महादेवी की जय हो !

मागन्धी—तुम्हें भी बुलाना होगा क्यों ? महाराज नहीं आते हैं तो तुम सब महारानी हो गई हो न ?

नवीना—दासी को आज्ञा मिलनी चाहिये। यह तो प्रतिक्षण श्री चरणों में रहती है। (पान कराती है)

मागन्धी—महाराज आज आवेंगे कि नहीं, इसका पता लगा कर शीघ्र आओ—

(नवीना जाती है)

मागन्धी—(आपही आप गाती है)—

अली ने क्यों भला अवहेला की।

घम्पक कली खिली सौरभ से उपा मनोहर बेली की ॥

विरस दिवस; मन वहलाने को मलयज से फिर खेला की।

अली ने क्यों भला अवहेला की ॥

नवीना—(प्रवेश करके)—महाराज आया ही चाहते हैं।

मागन्धी—अच्छा। आज मुझे बड़ा काम कम्ना है नवीना ! नर्तकियों को शीघ्र बुला—मेरी वेशभूषा भी ठीक है न—देख तो—

नवीना—वाह स्वामिनी, तुम्हें वेशभूषा की क्या आवश्यकता है—यह सहज सुन्दर रूप बनावटों से और भी बिगड़ जायगा।

मागन्धी—(हँसकर)—अच्छा अच्छा रहने दे और सब उप-

कम ठीक रहे, समझी । कोई बात अलमल न रहे । अन्त-
मप्रदा भी कोई बात न होने पाये । कम दिन जो कटा है वह
भी ठीक रहे ।

नराना—वह भी आपके कहने पर है । मैं मर आमी ठीक
किये देती हूँ ।

(जाती है)

(एक ओर से उदयन का प्रवेश, दूसरी ओर से नर्तकियों का प्रवेश—
बाग बागनी है और बागानी उदयन का हाथ पकड़ कर बीटती है ।)

(नर्तकियों का गान)

~ प्यारे मिर्छोड़ी होकर मन हमको छूटना है ।

बागो गरा बगानक शीतल,

मिथे हमारा हारव मरुपक,

जो छटोते हुए, हथीमे छुटना है ।

(नर्तकी जाती है)

बागानी—बागेश्वर ! क्या बड़े दिनों तक मेरा ध्यान भी
न था ? क्या मुझमें कोई अग्राध हुआ था ?

उदयन—जरी घिरे ! बागेश्वर में एक गौतम नाम के बड़े भारी
महात्मा पड़े हैं, जो आये तो 'बृद्ध'—करते हैं । देवी बदा-
हनी के मन्दिर में बजरा संघ निमग्न होना का दौर के पड़ेगा
मेरे में । बागेश्वर का बहना भी जरी निग्न आनी थी ।

बागेश्वर—(बगन कर)—नर निग्न मुझे बगो प्यारा भाव-

बहना—(बगन है)—जरी जरी यह जो सुन्दरी ही मृग थी ।

बागेश्वर—(बगन कर)—बागेश्वर मुझे के बगन बहना होना

था। अभी तो और भी होगा। हमने अनुरोध किया है कि वे कुछ दिनों तक ठहर कर कौशाम्बी में धर्म का प्रचार करें।

मागन्धी—आप पृथ्वीनाथ हैं—सब कुछ आपको सोहता है, किन्तु मैं तो अच्छी आँखों से इस गौतम को नहीं देखती। और यह सब मगध के राजमन्दिर में ही मुद्रियों का स्वांग अच्छा है, कौशाम्बी इस पाखंड से बची रहे तो बड़ा उत्तम हो। बिर्यों के मन्दिर में उपदेश क्यों हो। क्यों उन्हें पातिव्रत छोड़कर किसी और भी धर्म की आवश्यकता है ?

(पानपात्र बढ़ाती है)

उदयन—ठहरो मागन्धी ! पुरुष का हृदय बड़ा सशंक होता है, क्या तुम इसे नहीं जानती ? क्या अभी अभी तुमने कुछ विपाक व्यङ्ग नहीं किया है ? यह मदिरा अब मैं नहीं पीऊँगा। अभी आज ही भगवान का इसी पर उपदेश हुआ है, पर मैं देखता हूँ कि मदिरा के पहिले तुमने हलाहल मेरे हृदय में उड़ेल दिया। यह व्यङ्ग सूखे घास की तरह नीचे भी नहीं उतरता है और बाहर भी नहीं हो पाता है।

मागन्धी—क्षमा कीजिये नाथ ! मैं प्रार्थना करती हूँ, अपने हृदय को इस हाला से तृप्त कीजिये। अपराध क्षमा हो सम्राट् ! मैं दरिद्र-कन्या हूँ। मुझे आपके पाने पर और किसी की अभिलाषा नहीं है। वे आपको पा चुकी हैं, अब उन्हें और कुछ की बलवती आकांक्षा है, चाहे उसे लोग धर्म ही क्यों न कहें। मुझे इतनी सामर्थ्य भी नहीं, आवश्यकता भी नहीं।

उदयन—हूँ, अच्छा देखा जायगा। (मुग्ध होकर.) उठे

ममताशय

मागम्भी उठी । मुझे अपने हाथों में अपना प्रेम स्वरूप पात्र शीघ्र
दिताओ, फिर कोई बात होगी । (मागम्भी मदिरा पिलाती है)

वदयन—(मेमोमन होकर)—तो मागम्भी, कुछ मागो । अब
मुझे अपने मुख्यपन्थ को निर्निग्रह देने दो कि मैं एक अनौपचारिक
ताला का गलत मातिनी निरा को प्रकाशित करने वाले शरदवन्त
की बहना करवा हुआ मावना को सीमा को साथ लाऊँ, और
मुन्दारा मुग्धि निधाम मेरी बहना को आतिथ्यन करने लगे ।

मागम्भी—बही तो मैं भी चाहती हूँ कि मेरी मूर्खता के मेरे
आत्मनाय को विधोहिनी बीरा मदकारिणी हो । हरेण और
मूर्खी एक होकर बज हटे । विध भव त्रिमर्क मय वर सिर ठिक्का
है, और पागल हो जाय ।

वदयन—हाँ मागम्भी ! वह सब मुन्दारा बड़ा प्रभावशाली था,
मिगने वदयन को मुन्दारे घरलों में लुटा दिया । (अपन की गी कहा
करता है) दिमी दागी को भेजो कि वधवारनों के मन्दिर में ग । ...

मागम्भी—कार्यपुत्र की हृदिप्रवृत्त बीना से आवे ।

(वदती जाती है)

वदयन—यह एक गुप्त कुछ मुग्धी ।

(मागम्भी वद करती है—और जाती है—)

आओ दिने मैं को साथ आवे ।

मैं अपने मित्रों, वहाँ अब देने दिया करने है तुम्हारे ।

तुम्हारे होत तुम्हें वदता है, वही कि तुम्हें होने हो करने ।

आव कुछ सब की सब की, वही एक तुम सब सब वदने ।

आओ दिने मैं को साथ आवे ।

उदयन—हृदयेश्वरी ! कौन हमको तुमको अलग कर सकता है !—

हमारे वक्ष में बनकर हृदय, यह छवि समाएगी ।

स्वयं निज माधुरी छवि का रसीला राग गाएगी ॥

भलरा तब चेतना हो चित्त में कुछ रह न जाएगी ।

अकेले विश्व-मन्दिर में तुम्हीं को पूज पाएगी ॥

मागन्धी—प्रियतम ! मैं दासी हूँ ।

उदयन—नहीं, तुम आज से मेरी स्वामिनी बनो ।

(दासी वीणा लेकर आती है और उदयन के सामने रखती है; उदयन के उठाने के साथ ही साँप का बच्चा निकल पड़ता है—मागन्धी चिल्ला उठती है ।)

मागन्धी—पद्मावती ! तू यहाँ तक आगे बढ़ चुकी है ! जो मेरी शंका थी वह प्रत्यक्ष हुई ।

उदयन—(क्रोध से उठकर खड़ा हो जाता है)—अभी इसका प्रतिशोध लूँगा, ओह ऐसा पाखंड आचरण ! असह्य ।

मागन्धी—क्षमा हो सम्राट् ! आपके हाथ में न्यायदण्ड है । केवल प्रतिहिंसा से कोई कर्तव्य आपका निर्धारित न होना चाहिए, सहसा भी नहीं । प्रार्थना है कि आज आप विश्राम करें, कल विचार कर कोई काम कीजियेगा ।

उदयन—नहीं । किन्तु फिर भी तुम कह रही हो, अच्छा मैं विश्राम चाहता हूँ ।

मागन्धी—यहीं...

(उदयन लेटता है, मागन्धी पैर दबाती है)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

(बीजाप्पी के पथ में जीवक)

जीवक—(भार ॥ भार)—राजकुमारी ने भेट भी भेजे और मौजबंद के दरवाजे भी खुले, किन्तु मैं तो खरिद तो गया हूँ कि मैं क्या करूँ । बामबीदेवी और राजकी बच्चा पद्मावती, दोनों की एक ही तरह की व्यवस्था है । जिसमें अपना मरदाना ही दुन्दर है, वह बामबी भी क्या कर गयेगी । मुना है कि कई दिन से पद्मावती के मन्दिर में उदयन जाते ही मही और व्यवहारों में कुछ अमंगल्य में दिगन्त पड़ने हैं । क्योंकि ऊर्ध्व के परिजन होने के कारण मुझसे भी अच्छी तरह से बोले और मद्रागज विष्णुगार की क्या मुन कर भी कोई मग मही प्रकट दिया । राजी जाने को थी, वह भी मही आई । क्या करें, वहाँ जाकर बैठें कि बोरान ही जायें—

(राजी का प्रवेश)

राजी—ममका ! मद्रादेवी ने कहा है आपने जीवक से कहा कि मैंने किया मैं करूँ । मद्रादेवी को देना देना ऊर्ध्व पर है, आप से रहित ही मगव बनने जायें । हमारे बरगज तर मगज होने तो बसो आमुगेव बरग के कोई बगज निहारूँगी और गिला-त्री के भी बगजो का भी दृष्टि करूँगी । इस मगव तो प्रकट बरग जायद ही बरगव है । मद्रागज को विगति में मैं बसो भी शिरोव निगद मही बरगकी हूँ । ममका है कि बरग दिगी पद्मावती की बरगव हो, क्योंकि मैं मगो में मैंने बिगद बरग मग

दिये हैं। इसलिये मुझे अपनी कन्या समझ कर क्षमा करेंगे। मैं इस समय बड़ी दुखी हो रही हूँ; कर्तव्य निर्धारण नहीं कर सकती हूँ।

जीवक—राजकुमारी से कहना कि मैं उनकी कल्याण-कामना करता हूँ। वे अपने पूर्व गौरव को लाभ करें, और मगध की कोई चिन्ता न करें। मैं केवल संदेश कहने यहाँ चला आया था। अभी मुझे शीघ्र कोशल जाना होगा। वहाँ जाकर अब मैं सब कार्य ठीक कर लूँगा।

दासी—बहुत अच्छा। (नमस्कार करके जाती है)

(गौतम का संघ के साथ प्रवेश)

जीवक—महाश्रमण के चरणों में अभिवादन करता हूँ।

गौतम—शान्ति मिले, धर्म में श्रद्धा हो। जीवक, तुम अच्छे तो हो? कहो मगध के क्या समाचार हैं? मगध-नरेश सकुशल तो हैं?

जीवक—तथागत! आप से क्या छिपा है। फिर भी मैं कह देना चाहता हूँ कि मगध-राजकुल में बड़ी अशान्ति है। वानप्रस्थ आश्रम में भी महाराज बिम्बसार को शान्ति नहीं है।

गौतम—जीवक!—

✓ चञ्चल चन्द्र, सूर्य है चञ्चल,

चपल सभी ग्रह तारा हैं।

चञ्चल अनिल, अनल, जल, थल सब,

चञ्चल जैसे पारा हैं ॥

है अजीर्ण । पाचन देना हो दो, नहीं तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि वैद्य लोग अपने मतलब से रेचन तो अवश्य ही देंगे । अच्छा हाँ, कहो तो बुद्धि के अजीर्ण में तो रेचन ही न गुणकारी होगा ? सुनो जी, मिथ्या आहार से पेट का अजीर्ण होता है और मिथ्या विहार से बुद्धि का । किन्तु, महर्षि अग्निवेश ने कहा है कि इसमें रेचन ही गुणकारी होता है ।

(हँसता है)

जीवक—तुम दूसरे की तो कुछ सुनोहीगे नहीं ?

वसन्तक—सुना है कि धनवन्तरि के पास एक ऐसी पुढ़िया थी कि बुढ़िया युवती हो जाय और दरिद्रता का केचुल छोड़कर मणिमयी धनवती हो जाय । क्या तुम्हारे पास भी—उहूँ—नहीं है । तुम क्या जानो ।

जीवक—तुम्हारा तात्पर्य क्या है ? हम कुछ नहीं समझ सके ।

वसन्तक—केवल खन वट्टा चलाते रहें । और मूर्खता का पुट पाक करते रहें । महाराज ने एक नई दरिद्र कन्या से व्याह कर लिया है, उसके साथ मिथ्या विहार करते करते उन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है । महादेवी वासवदत्ता और पद्मावती जीर्ण हो गई हैं, तब कैसे मेल हो ? क्या तुम उन्हें अपनी औपध से, उस विवाह करने के समय की अवस्था का नहीं बना सकते, जिसमें महाराज इस अजीर्ण से बच जायँ ।

जीवक—तुम्हारे से चाटुकार और भी चाट लगा देंगे, दो चार और जुटा देंगे ।

बसन्तक—वसमें तो गुरुजनो का ही अनुकरण है । शत्रु ने दो व्याद किये, वो दामाद ने तीन । कुछ उम्रति ही रही ।

जीवक—दोनों अपने कर्म के फल भोग रहे हैं । यही कोई यथार्थ बात भी कहने सुनने की है या यही हंसोदपन ?

बसन्तक—दसराइये मत । यही रानी वासवदत्ता पछारही को सहोदरा भगिनी की तरह प्यार करती हैं । उनका कोई अनिष्ट नहीं होने पावेगा । उन्होंने ही मुझे भेजा है और प्रार्थना की है कि "आर्य्यपुत्र को अथवा आप भंग रहे हैं, उनके व्यवहार पर ध्यान न दीजियेगा । पछारनी मेरी सहोदरा है, उसकी ओर से आज निमित्त रहे ।" क्या करें वे लाचार हैं, नहीं तो आर्य्यो दो बार देखकर गोपी रात्रा को गिरता देखी । फिर तो मर जनकी गद्दी शान्त हो जाती । अथवा आप हमारा न हर्षियेगा । कोराज ने समझार भेजियेगा । नमस्कार ।

(ईश्वर हुआ जाता है)

जीवक—अथवा, अब हम भी कोराज जायें ।

(गंगा है)

सातवाँ दृश्य

स्थान—कोशल में धावस्ती का दरवार

(प्रसेनजित सिंहासन पर और अमात्य अनुचरगण यथास्थान बैठे हैं)

प्रसेनजित—क्या यह सब सच है ? सुदत्त, तुमने आज मुझे एक बड़ी आश्चर्यजनक बात सुनाई है । क्या सचमुच अजातशत्रु ने अपने पिता को सिंहासन से उतार कर उनका तिरस्कार किया है ?

सुदत्त—पृथ्वीनाथ ! यह उतना ही सत्य है जितना कि श्रीमान् का इस समय सिंहासन पर विराजना सत्य है । मगधनरेश से एक पट्यन्त्र द्वारा सिंहासन छीन लिया गया है ?

विरुद्धक—हमने तो सुना है कि महाराज बिम्बसार ने वान-प्रस्थ आश्रम स्वीकार किया है और उस अवस्था में युवराज का राज्य सँभालना अच्छा ही है ।

प्रसेनजित—विरुद्धक ! क्या अजात की ऐसी परिपक्व अवस्था है कि मगध नरेश उसे साम्राज्य का बोझ उठाने की आज्ञा दें ?

विरुद्धक—पिताजी ! यदि क्षमा हो तो मैं यह कहने में संकोच न करूँगा कि युवराज को राज्यसंचालन की शिक्षा देना महाराज का कर्तव्य है ।

प्रसेनजित—(उत्तेजित होकर)—और अब तुम दूसरे शब्दों में उस शिक्षा को पाने का उद्योग कर रहे हो । क्या राज्याधिकार

ऐसी प्रवृत्ति को जानु है कि कर्मों और विद्वत्ता एक बार ही मुक्ति दी जाय ?

विद्वत्—युव यदि रिता में अथवा अधिकांश भोगों प्रमत्त होय हो क्या है ?

प्रमत्त—(गीत भी उत्तेजित होकर)—अथ तू अथवा ही मीमांसा का विभाग है । कम दिन, जब तेरी मातापिता में तेरे अथवा भोगों की बातें सुनी थी, मुझे विभाग नहीं हुआ, अथ मुझे विभाग हो गया कि शत्रुओं के कथनानुसार तेरी माता अथवा ही शत्रुओं की है । नहीं तो, तू इस पवित्र कौशल की विधिबद्धता का पानी पेट कर अपने रिता के साथ कर्म और अथवा न करता । क्या इसी कौशल में रामचन्द्र और दशरथ के मरणा पुत्र और रिता अथवा कदाचित् नहीं होय है ? क्या ऐसी दुर्भाग्य भोगों की तरह भवनाष्ट मन्त्रान् अथवा रिता माताओं का हो क्या न करेगी ?

गुरु—इतिहास ! कर्म का अथवा मार्गनीय है ।

विद्वत्—युव शरीर गुरु । रिता करेगा और पुत्र वसे सुमेय । तुम कादुर्भाग्य करके मुझे अथवा भोग न करो ।

प्रमत्त—अथवा ? रिता ही पुत्र का अथवा ! । क्या यह विद्वत् गुरु-दशरथ जो मीमांसा में कथित है, पुरातन होने के कारण है ? अथवा ?

गुरु—अथवा गुरु-दशरथ ।

प्रमत्त—(गीत)—कर्मों में अथवा सर्व मोक्ष देता पादित्ये ।

(गीत)—अथवा में यह विधिबद्ध विद्वत् अथवा कर्म अथवा गुरु-

राज पद से वञ्चित किया गया । और, इसकी माता का राज-महिषी का-सा सम्मान नहीं होगा—केवल जोविका-निर्वाह के लिये इसे राजकोष से व्यय मिला करेगा ।

विरुद्धक—पिताजी ! मैं न्याय चाहता हूँ ।

प्रसेन०—अबोध ! तू पिता से न्याय चाहता है, यदि पक्ष निर्वल है और पुत्र अपराधी है तो किस पिता ने पुत्र के लिये न्याय किया है, परन्तु मैं यहाँ पिता नहीं राजा हूँ । तेरा बड़प्पन और महत्त्वकांक्षा से पूर्ण हृदय अच्छी तरह कुचल दिया जायगा—घस, चला जा ।

(विरुद्धक सिर झुका कर जाता है)

अमात्य—यदि अपराध क्षमा हो तो कुछ प्रार्थना करूँ । यह न्याय नहीं है । कोशल के राजदण्ड ने कभी ऐसी व्यवस्था नहीं दी । किसी दूसरे के पुत्र का कलंकित कर्म सुनकर श्रीमान् उत्तेजित होकर अपने पुत्र को दण्ड दें, यह तो श्रीमान् की प्रत्यक्ष निर्वलता है । क्या श्रीमान् उसे उचित शासक नहीं बनाना चाहते ?

प्रसेन०—चुप रहो मंत्री ! जो कहता हूँ उसे करो ।

(दौवारिक जाता है)

दौवारिक—महाराज की जय हो । मगध से जीवक आये हैं ।

प्रसेन०—जाओ लीवा लाओ ।

(दौवारिक जाता है और जीवक को लीवा लाता है)

जीवक—जय हो—कोशलनरेश की !

प्रसेन०—कुशल तो है जीवक ! तुम्हारे महाराज की तो सब

क्यों हम सुन चुके हैं, उन्हें दुहराने को कोई आवश्यकता नहीं,
हाँ, कोई नया समाचार हो तो बरो ।

जीवक—दयालु-देव, कोई नया समाचार नहीं है । केवल
अपमान को सन्तुष्टा दी महादेवी वाग्वी को दुःखित कर सच्यो
है । और कुछ नहीं ।

प्रमोद—तुम लोगों ने तो राजकुमार को अर्घ्य दिया ही ।
अनु, देवी वाग्वी को अपमान भोगने की आवश्यकता नहीं ।
उन्हें अपने मन्त्री पुत्र के भिक्षात्र पर जीवन निर्वाह नहीं करना
होगा । मंत्री । कारी की प्रजा के नाम एक पत्र लिखो कि वह
अज्ञान को राज-कर न देकर वाग्वी को अपमान कर प्रदान करें ।
क्योंकि हमें मैंने वाग्वी को दिया है, राजा पुत्र का नाम पर
कोई अधिकार नहीं है ।

जीवक—महाप्रजा ! देवी वाग्वी ने कुराव पूरा है और
है कि इन व्यवस्था में मैं आप्पुत्र को छोड़कर नहीं जा
ता, इन गिरे माँ के पुत्र अन्यथा न समझेंगे ।

प्रमोद—जीवक ! यह तुम क्या कहते हो । कौरवकुमारी
कृताञ्जलि-निर्मल राज्या का वरदान कसके समझ है । दुरिष्ठ अवि
के साथ वह दिव्य जीवन दर्शन कर सकती थी । क्या वाग्वी
दिमी दुर्गा कौरव की राजकुमारी है ? कुतर्हीन पावन यही
तो आप्पुत्रात्मकता का वास्तविक स्वरूप है । विषय का बरी मुक्त
पन है । अज्ञा, उसके विचार करो ।

(जीवक का आवाज)

(सेनापति बन्धुल का प्रवेश)

बन्धुल—प्रबलप्रताप कोशल नरेश की जय हो ।

प्रसेन०—स्वागत ! सेनापते ! तुम्हारे मुख से “जय” शब्द कितना सुहावना सुनाई पड़ता है । कहो क्या समाचार है ?

बन्धुल—सम्राट्, कोशल की विजयिनी पताका वीरों के रक्त में अपने अरुणोदय का तीव्र तेज दौड़ाती है और शत्रुओं को उसी रक्त में नहाने की सूचना देती है । राजाधिराज ! हिमालय का सीमाप्रान्त बर्बर लिच्छिवियों के रक्त से और भी ठंडा कर दिया गया है । कोशल के प्रचण्ड नाम से ही शान्ति स्वयं पहरा दे रही है । यह सब श्रीचरणों का प्रताप है । अब विद्रोह का नाम भी नहीं है । विदेशी बर्बर शताब्दियों तक उधर देखने का भी साहस न करेंगे ।

प्रसेन०—धन्य है विजयीवीर ! कोशल तुम्हारे ऊपर गर्व करता है और आशीर्वादपूर्ण अभिनन्दन करता है । लो यह विजय का स्मरण-चिन्ह ।

(हार पहिनाता है)

सत्र—जय—सेनापति बन्धुल की जय !

प्रसेन०—(चौंकते हुए)—हैं !—जाओ विश्राम करो ।

(बन्धुल जाता है)

आठवाँ दृश्य

स्थान—दफ्तेर

(कुमार विन्दक पेशी बेंचे हैं)

✓ विन्दक—(आर हो जाय)—योर अरमान ! अनादर की पराकाष्ठा और तिरस्कार का भैरवनाह ! यह अमहनीय है । प्रियपूर्ण सोराज देश का मीमा कमी की मेरी आँखों से दूर हो जाती । किन्तु, मेरे जीवन का विदाम-मूत्र एक बड़े कोमल कुसुम के साथ बँध गया है । इरफ़ मोरिषे अभिलाषाओं का नीप हो रहा है ।

अहा ! वह प्रमाण का मनोहर गन्ध विष-भर की मदिरा होकर मेरे कमाद की महकगिरी कोमल कल्पनाओं का भण्डार हो गया । मतिदा ! तुम्हें मैंने अपने जीवन के पहले प्रीति की अहं रात्रि में आनन्दपूर्ण मण्डपों में कोमल, हीरक कुसुम के रूप में आने देखा । विष के अमंगल कोमल कंठ की रसीली छाने सुहार बनकर मेरा अभिनन्दन करने, तुम्हें सम्राज कर बनाने के लिये मण्डपों को गई थी । मिशिर छगों से मिश्र बन मेरे कदमों की मोड़ी बना था, नू कीरे पीरे बगी के महारे कदम—जहाँ से तेरा स्वागत किया—बहुवार मजबूत मेरे दरिद्र की दुआ से परिचायक बन गया, और बुरगोरी मतिदा के एक कोमल मूत्र का आसन देकर मेरी सेवा करने लगा । बगने सोने में सोने तुम्हें जब आसन से भी उखाड़ा और गिराया । नू पराधीन का ही गई । मतिज जगज की कुटिल मुहूर्ति के

आलबाल में आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्य लेकर स्त्री हो गई। यह कैसा इन्द्रजाल था—प्रभात का वह मनोहर स्वप्न था—सेनापति बन्धुल एक हृदयहीन क्रूर सैनिक ने तुम्हें अपने उज्ज्वल का फूल बनाया। और हम तुम्हें अपने घेरे में रखने के लिये कटीली माड़ी बन कर पड़े ही रहे। कोशल के आज भी हम कंटक स्वरूप हैं.....।

(कोशल की रानी का प्रवेश)

रानी—छिः राजकुमार ! इसी दुर्बल हृदय से तुम संसार में कुछ कर सकोगे ! स्त्रियों की-सी रोदनशील प्रकृति लेकर तुम कोशल के सम्राट् बनोगे !

विरुद्धक—माँ, क्या कहती हो। हम आज एक तिरस्कृत युवक मात्र हैं। कहाँ का कोशल और कौन राजकुमार !

रानी—देखो, तुम मेरी सन्तान होकर मेरे सामने ऐसी पोच घातें न कहो। दासी की पुत्री होकर भी मैं रानरानी बनी और हठ से मैंने इस पद को ग्रहण किया, और तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोंक होगे, यह कभी मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। बालक ! मानव अपनी इच्छाशक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार, दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्व भर में छोटे से बड़े होना यही प्रत्यक्ष नियम है, तुम इसकी क्यों अवहेला करते हो। महत्त्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुण्ड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिये कालस्वरूप बनो, साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरोगे या वेही भाग जाँयगी। मलिका तो क्या, राजलक्ष्मी

मुझे भेज देती है । किन्तु मैं यह क्या मुन रही हूँ—सामी मुझमें
अज्ञानगुरु है । भला यह वेदना मुझमें कैसे सही जायगी । कई
बार दार्जी गाँव किन्तु वहाँ सो लेकर ही ऐंम हैं कि हिमी को
प्रार्थना, अनुनय और विनय करने का मादस ही नहीं होता ।
किर भी कोई पिन्ना नहीं, राजमछ प्रजा को बिश्रोही होने का
मय हो क्यों हो ?—

१ "इमता प्रेमनिधि सुन्दर सरल है
अप्यमय है, वही हममें गलत है ।"

(वेदना से—'मगलान बुद्ध की जय हो')

पद्मावती—अहा ! मंच सहित कल्याणनिधान जा रहे हैं,
दरान गो बन्द !

(बिदली से देखती है)

(वरुण का प्रवेग)

वरुण—(कोप से)—सानीयमी ! देखो, यह मेरे हृदय का
रिप—मेरी कामना का निन्दक, जा रहा है । इमीविगे न यह
मया मंगलता बना है ।

पद्मावती—(कीच कर लड़ो को जाती है, हाथ में दहर)—अनु !
मदारी ! लमा हो ! यह मूर्ति मेरी कामना का रिप नहीं है; किन्तु
अप्यम है । मय ! शिगडे मय पर चालको भी असीम शक्ति है,
हम हमसे-उत्तम मगलार्थी को भी जिन्दोंने असीमकार दिया था—
शक्ति के माधन, कदम के माधन—उन बुद्ध को, मंगलितरी
की कर्मों कादरवचना नहीं ।

उदयन—किन्तु मेरे प्राणों की है ? क्यों, इसीलिये न वीणा में सोंप का वच्चा छिपाकर भेजा था ! तू मगध की राजकुमारी है, प्रभुत्व का विष जो तेरे रक्त में घुसा है वह कितनी ही हत्याएँ कर सकता है । दुराचारिणी ! तेरी छलना का दाँव मुझ पर नहीं चला—अब तेरा अन्त है, सावधान !

(तलवार निकालता है)

पद्मावती—मैं कौशाम्बी नरेश की राजभक्त प्रजा हूँ । स्वामी, किसी छलना का आप पर अधिकार है । चाहे वह दोष मेरे सिर पर ही धरा जाय । यदि विचारक दृष्टि से मैं अपराधिनी हूँ तो दण्ड भी मुझे स्वीकार है, और वह दण्ड, वह शान्तिदायक दण्ड, यदि स्वामी के कर कमलों से मिले तो मेरा सौभाग्य है । प्रभु ! पाप का दण्ड ग्रहण कर लेने से वही पुण्य हो जाता है ।

(सिर झुका कर घुटने टेकती है)

उदयन—पापीयसी ! तेरी वाणी का घुमाव-फिराव मुझे अपनी ओर नहीं आकर्षित करेगा । दुष्टे ! इस हलाहल से भरे हुए हृदय को निकालना ही होगा । प्रार्थना कर ले ।

पद्मावती—मेरे नाथ ! इह जन्म के सर्वस्व ! और पर जन्म के स्वर्ग ! तुम्हीं मेरी गति हो और तुम्हीं मेरे ध्येय हो; जब तुम्हीं समक्ष हो तो प्रार्थना किसकी करूँ ? मैं प्रस्तुत हूँ ।

उदयन—अच्छा ।

(तलवार उठाता है, इसी समय वासवदत्ता प्रवेश करती है)

वासवदत्ता—ठहरिए ! मागन्धी की दासी नवीना आ रही है,

जिसने सब पाप स्वीकार किया है। आपको हमारे इस राज-
मन्दिर की सीमा के भीतर, इस तरह इतना करने का अधिकार
नहीं है। मैं इसका विचार करूँगी और प्रमाणित कर दूँगी कि
अपराधी कोई दूसरा है। वाह ! इसी मुक्ति पर आप राग-शामन
कर रहे हैं ! क्यों है जी ? मुझको मागन्धी को और नवीना को।
हामी—महारेवी की ओ आओ।

(जली है)

नरपति—देवी ! मेरा ना हाथ ही नहीं बढता। है, यह क्या
माया है !

आमबद्धा—महाराज ! यह गनी का लेज है। माय का
शामन है। हरपरीन मगर का मवार नहीं है। देवी पद्मावती !
तू पनि के अपराधों को क्षमा कर।

पद्मावती—(रद कर)—मगरन, यह क्या ? मेरे ग्यामी ! मेरा
अपराध क्षमा हो—नगे बह गईं होगी।

(हाथ सींचा करती है)

हामी—(अनेक बगडे)—महाराज, भागिये ! महारेवी दृष्टिये,
बह देगिने आज की जगह इतर ही बसी का रही है। मैं महा-
रानी के मरण में आज लग गई है। और उनका पता नहीं है।
मरिजा मरनी हुई बह रही थी कि मागन्धी मारें मरी और मुझे
भी मार दिया, यह महाराज का मागन्धी मरनी जाना चाहती थी।

नरपति—क्या ? बहपत्नी ! कदे मैं क्या पता हो गया था !
देवी ! महाराज जाना हो। (पद्मावती के सामने मुझे देखा है)

पहला अंक

पद्मावती—उठिये ! उठिये महाराज !! दासी को लज्जित न कीजिये ।

वासवदत्ता—यह प्रणय-लीला दूसरी जगह करना—चलो हटो, यह देखो लपट फैल रही है !

(वासवदत्ता दोनों का हाथ पकड़ कर खींच कर खड़ी हो जाती है । पर्दा फटता है; मागन्धी के महल में आग लगी हुई दिखाई पड़ती है ।)

(यवनिका-पतन)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

कान—मगध

(भगवान् की शयनशाला)

भगवान्—यह क्या मगध है समुद्र ! मैं यह क्या सुन रहा हूँ ! प्रजा भी मेरा बहने का मादम कर सकती है ? बीड़ी भी, पंख लगा कर बाज के साथ बढ़ना चाहती है ! 'कर मैं न दूंगा' यह बात तिमरे मित्रों से मित्रों, बाल के साथ ही वह भी क्यों न मित्रता की गई ? क्षात्री का दण्डनायक क्यों मूर्ख है ? तुमने कभी मगध जमें बन्दी क्यों नहीं किया ?

समुद्र—मगध ! मेरा कोई अस्त्राथ नहीं । दारुण से बड़ा वस्त्रव कथा था । ग्रीष्म मासके विषट् वारु के आसक्त में भोग पीड़ित थे । दण्डनायक बहता था कि क्षात्री के नागरिक क्यों हैं कि हम बंशज की प्रजा है, और.....

भगवान्—हरी—हरी—हरी क्यों हो ?

समुद्र—कोई हम भोग जग कथाकारी राजा को कर नहीं देंगे जो अश्वमेध के बल से विश्व के सामने ही मित्रता करने का पैर मजबूत है । और जो पीड़ित प्रजा को बंधा भी नहीं कर सकता—उसके दुःखों को नहीं सुनता, मगध.....

अजात०—हाँ, हाँ, कहो संकोच न करो ।

समुद्र०—सम्राट् ! इसी तरह की बहुत सी बातें वे कहते हैं, उन्हें सुनने से कोई लाभ नहीं । अब, जो आज्ञा दीजिये वह किया जाय ।

अजात०—ओह ! अब समझ में आया । यह काशी की प्रजा-का कण्ठ नहीं, इसमें हमारी विमाता का ज्यंगस्वर है ! इसका प्रति-कार आवश्यक है । इस प्रकार अजात शत्रु को कोई अपदस्थ नहीं कर सकता ।

(कुछ सोचता है)

दौवारिक—(प्रवेश करके)—जय हो देव, आर्य्य देवदत्त आ रहे हैं ।

(देवदत्तका प्रवेश)

देवदत्त—सम्राट् ! कल्याण हो ! धर्म की वृद्धि हो ! शासन सुखद हो ।

अजात०—नमस्कार भगवन् ! आप की कृपा से सब कुछ होगा और यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आवश्यकता के समय आप पुकारे हुए देवता की तरह स्वतः आ जाते हैं ।

देवदत्त—(बैठता हुआ)—आवश्यकता कैसी ? राजन् ! आप को कमी क्या है, और हम लोगों के पास आशीर्वाद के अतिरिक्त और क्या धरा है ? फिर भी सुनूँ—

अजात०—कोशल को दाँत जम रहे हैं । वह काशी की प्रजा में विद्रोह कराना चाहता है । वहाँ के लोग राजस्व देना अस्वीकार करते हैं ।

दूसरा

पा

अज्ञान—

१ प्रज्ञा भी है

१ ज्ञा भी
एतद् है।

दूसरा अंक

संस्कार के कीचड़ में निमज्जित राजतन्त्र की पद्धति, नवीन उद्योग को, असफल कर देगी ? तिल-भर भी जो अपने पुराने विचारों से हटना नहीं चाहता, उसे अवश्य नष्ट हो जाना चाहिये, क्योंकि यह जगत ही गतिशील है ।

देवदत्त—अधिकार—चाहे वे कैसे भी जर्जर और हलकी नाँव के हों, अथवा अन्याय ही से क्यों न संगठित हों, सहज में नहीं छोड़े जा सकते । भद्रजन उन्हें विचार से काम में लाते हैं और हठी तथा दुराग्रही उनमें तब तक परिवर्तन भी नहीं करना चाहते, जब तक वे एक चार ही नहीं हटा दिये जायें—

दौवारिक—(प्रवेद करके)—जय हो देव ! महामान्य परिषद् के सभ्यगण आप हैं ।

अजात०—वे शीघ्र आवें ।

(दौवारिक जाकर लिवा लाता है)

परिषद्गण—सम्राट की जय हो ! महात्मा को अभिवादन करता हूँ ।

देवदत्त—राष्ट्र का कल्याण हो । राजा और परिषद् की श्रुद्धि हो ! बैठो ।

परिषद्०—क्या आज्ञा है ?

अजात०—आप लोग राष्ट्र के शुभचिन्तक हैं, जब मैंने यह प्रकारण घोष मेरे सिर पर रखा, और मैंने इसे किया, तब इसे भी मैंने किशोर-जीवन का एक कौतुक ही था । किन्तु बात वैसी नहीं थी । मान्य महोदयों, राष्ट्र

देवदत्त—पागल गौतम आसकल ममी और घूम रहा है, इसी-
जिये । कोई चिन्ता नहीं, काम चलाक । गौतम की कोई चाल नहीं
लगेगी । यदि मुनिप्रिय धारण करके भी वह मेरे आश्रम के पद-
मयों में जिये है तो मैं भी हठमग्न नम्रता प्रगटि नहीं बनूँगा ।
परिवर को आह्वान करो—

अज्ञानः—जिमी आता—(शीतलिक ने)—जाओ जी, परि-
वर के लोगों को बुला लाओ ।

(शीतलिक जाता है, फिर प्रवेश—)

शीतलिक—महार्ज की आज्ञा हो । कोराव में कोई गुन अनुपम
आता है, और दर्शन की इच्छा प्रकट करता है ।

देवदत्त—कौं जिया लाओ ।

(शीतलिक आकर विज्ञा जाता है)

दृष्ट—महाश महार्ज की आज्ञा हो । कुमार विक्रम ने यह वस्त्र
कीर्तन की सेवा में भेजा है ।

(यह देता है, अज्ञानानु वस्त्र यह वह देवदत्त को दे देने है)

देवदत्त—(वस्त्र)—वाह ! देता सुयोग्य है । इस लीन क्यों
म महामन होगे । दृष्ट, सुन्दर शीतल पुत्रवार और वस्त्र मिलेगा—
ज्यों विज्ञात करो ।

(दृष्ट जाता है)

अज्ञानः—सुन्दर ! बड़ी अनुज्ञा करता है ! महाश जीता
परिचरन कर चुका है, बड़ी तो योग्य भी आता है । इस लीन
महामन कि इस सुन्दर को क्या बर्दा है और इतने विदामन वा
विज्ञात सोच है ? क्या यह सुन्दर और विदामन से बर्दा दूरे !

तरह और प्रदेश भी स्वतन्त्र होने की चेष्टा न करेंगे ? क्या इसी में राष्ट्र का कल्याण है ?

सध—कभी नहीं, कभी नहीं। ऐसा कदापि न होने पावेगा।

अजात०—तब आप लोग हमारा साथ देने के लिये पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं ? देश को अपमान से बचाना चाहते हैं ?

सध—अवश्य ! राष्ट्र के कल्याण के लिये प्राण तक विसर्जन किया जा सकता है और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

देवदत्त—तथास्तु ! क्या इसके लिये कोई नीति आप लोग निर्धारित करेंगे ?

एक सभ्य—हमारी सम्मति है कि आप ही इस परिषद के प्रधान और नवीन सम्राट् को अपनी स्वतन्त्र सम्मति देकर राष्ट्रका कल्याण करें, क्योंकि आप सदृश महात्मा सर्वलोक के हित की कामना रखते हैं। राष्ट्र का उद्धार करना भी भारी परोपकार है।

अजात०—यह हमें भी स्वीकार है।

देवदत्त—मेरी सम्मति है कि साम्राज्य का सैनिक अधिकार सम्राट् को लेकर सेनापति के रूप से कोशल के साथ विग्रह और उसका दमन करने को अग्रसर होना चाहिए। समुद्रदत्त गुप्त-प्रणिधि बनकर काशी जावें और प्रजाको मगध के अनुकूल बनावें, तथा शासन-भार परिषद अपने सिर पर ले।

दूसरा सभ्य—यदि सम्राट् बिम्बसार इससे अपमान समझे ?

देवदत्त—जिसने राज्य अपने हाथ से छोड़कर स्त्री की वश्यता स्वीकार कर ली, उसे इसका ध्यान भी नहीं हो । फिर

ऐसी गुप्त शक्ति का कार्य मुझे हाथों पल रहा है जो इस शक्ति-
शास्त्री मगध राष्ट्र को चकित नहीं देगा चाहता । और हमने
केवल इस धोखे को आप लोगों का सुभेष्टता का सहारा पाकर
जिया था । आप लोग बगाइये कि कम शक्ति का दमन आप
लोगों को अभीष्ट है कि नहीं ? या अपने राष्ट्र और सम्राट को
आप लोग अव्यक्तित करना चाहते हैं ?

परिषद्—कभी नहीं । मगध का राष्ट्र मदेव गय से उन्नत
होगा, और विरोधी शक्ति पराजित होगी ।

देवदत्त—सभ्यो ! मुझ में भी कहना चाहता हूँ । हमारा
व्यक्ति भी आप लोगों का सहकारी हो सकता है और यह राष्ट्र
का सम्मान करने में सहायता देने को प्रानुन है । इस समय जबकि
कोष्ठन का राष्ट्र अपने जीवन में पैर रख रहा है तब विद्रोह की
आवरणता नहीं, राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को जगदी वसति
सोचनी चाहिये । राजकुल के औद्योगिक मगधों में और राष्ट्र से
कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं कि उनके वधवासी होकर हम अपने देश
की और उन्नति की दुर्गता कराते । सम्राट की विमाना धर धार
विजय की सूचना दे रही हैं । मण्डि मदानाम्य सम्राट विमाना
मे अपने मगध अधिकार करने सुयोग्य सम्मान को दे दिए हैं, फिर
भी ऐसा दुरभेष्टा क्यों की जा रही है ! जारी जो कि बहुत दिनों
मे मगध का एक सम्मान प्राने हो रहा है, बागरी देश के पराजित से
सामान्य देश सम्मान प्राप्त है । यह करता है कि मैं कोशाय का
दिना हुआ बागरीदेशी का स्थिति पत्र हूँ । क्या ऐसे सुगम्य और
पनी मीरा को सम्मान होय देने के लिए प्रानुन है ? क्या फिर हमी

उन्हे ममता प्रवहार बातचीतों की अनुमति में होंगे।—(मोक्षर)
और भी एक बात है वह मैं भूल गया था, वह यह कि इस कार्य
को जलम रूप से चकाने के लिये ममदेवी क्षतना परिपद की दम-
दम दिया करें।

ममदेवी—यदि आता हो तो मैं भी कुछ नष्ट।

परिपद—हाँ, हाँ, अवश्य।

ममदेवी—यह एक भी मकल नहीं होगा, जब तक देवी
बागरी के हाथ पैर चकाने रहेंगे। हमारी माधना है कि यदि
आव सोग निम्न गट्ट का चम्पाना पारने दें तो पहिले इसका
चम करें।

देवदत्त—मुन्नाग मन्त्रों क्या है ?

ममदेवी—यही कि बागरी देवी को ममदेवी विम्वार में
आव सोग दिया नहीं जा सकता—दिर भी आवश्यक्ता में
आव होकर पग चकाने की दृष्टि पूर्णत्व में होनी चाहिए।

हीनरा मन्त्र—क्या ममदेवी कर्नी बनाने जायेंगे ? मैं मेरी
कीर्ति को ममदेवी बनाना हूँ। यह अनर्थ है ! अनर्थ है !

देवदत्त—हरिषे ! आनी कर्मिणा को ममदेवी कीर्ति में और
दिव्य के लीन को मन मुक्त कीर्ति में। ममदेवी ममदेवी विम्वार
की कर्नी कर्नी बनाने जाना, किन्तु निम्नत्व जाना है। तो मैं
विम्वार, केवल कार्यकीर्ति पर, ओ कि ममदेवी मुन रातु है।
और ममदेवी के लीन ममदेवी जाना कर्नी। यह किमी पर ममदेवी
जाने ममदेवी की ममदेवी म विम्वार जान। किन्तु मुन्नाग की रात-

दूसरा अंक

मर्यादा कह कर अपना कार्य निकाला जाय । क्योंकि ऐसे समय में राजकुल की विशेष रक्षा होनी चाहिए ।

तीसरा सभ्य—तब मेरा कोई विरोध नहीं ।

अजात०—फिर, आप लोग आज की इस मन्त्रणा से सहमत हैं ?

सब—हम सबको स्वीकार है ।

अजात०—तथास्तु ।

(सब जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

दुमरा दृश्य

ध्यान—पथ

(मार्ग में बन्धुन)

बन्धुन—(श्रवण)—इस अभिमानी राजकुमार से तो मिलने की इच्छा भी नहीं थी—किन्तु क्या करें, हमें आर्षीदार भी नहीं कर सचा। कोरा मनोरंजना ने जो मुझे कारी का मामला बनाया वह मुझे अच्छा नहीं लगता, किन्तु राजा की आज्ञा। मुझे तो गरम और सैनिक जीवन ही अधिक है। यह सामन्त का आह-व्यवहार पर बग़दावरण की मूखना देगा है। महाराज प्रमोदजित से कहा है कि 'शीघ्र ही समाप्त कारी पर अधिकार करना चाहेंगा, इस शिष्टे तुम्हारा बर्हो जाना आवश्यक है।' यशों का दण्डनायक तो मुझसे बड़ा है। अच्छा फिर देना जायगा।—(रुहता है)—यह मामला मैं नहीं आता कि पदाल में कुमार क्यों मुझसे मिलना चाहता है।

(रिपटक का प्रवेश)

रिपटक—मेनारने ! कुशल तो है ?

बन्धुन—कुमार की तब हो ! क्या आज्ञा है ? आप क्यों आये हैं ?

रिपटक—नित्र बन्धुन ! मैं तो निराश्रित गणमन्त्राल हूँ । फिर आपका मन मार कर, बड़े बड़े निया का ही निहासन क्यों न हो, मुझे अधिक नहीं ।

बन्धुन—राजकुमार ! आपकी मन्त्राल ने निराश्रित तो नहीं

किया, फिर आप क्यों इस तरह अकेले घूमते हैं ? चलिये—काशी का सिंहासन आपको मैं दिला सकता हूँ ।

विरुद्धक—नहीं, बन्धुल ! मैं दया से दिया हुआ दान नहीं चाहता । मुझे तो अधिकार चाहिये, स्वत्व चाहिये ।

बन्धुल—फिर आप क्या करेंगे ?

विरुद्धक—जो कर रहा हूँ ।

बन्धुल—वह क्या ?

विरुद्धक—मैं बाहुबल से उपार्जन करूँगा । मृगया करूँगा । क्षत्रिय-कुमार हूँ, चिन्ता क्या है । स्पष्ट कहता हूँ बन्धुल, मैं साहसिक हो गया हूँ । अब वही मेरी वृत्ति है । राज्य स्थापन करने के पहिले मगध के भूपाल भी तो यही करते थे !

बन्धुल—सावधान ! राजकुमार ! ऐसी दुराचार की बात न सोचिए । यदि आप इस पथ से नहीं लौटते तब मेरा कुछ कर्त्तव्य होगा, वह आपके लिए बड़ा कठोर होगा । आतङ्क को दमन करना प्रत्येक राजपुरुष का कर्म है । यह युवराज को भी मानना ही पड़ेगा ।

विरुद्धक—भिन्न बन्धुल ! तुम बड़े सरल हो । जब तुम्हारी सीमा के भीतर कोई उपद्रव होगा तो मुझे इसी तरह आह्वान कर सकते हो । किन्तु इस समय तो मैं एक दूसरी—तुम्हारे शुभ की—बात कहने आया हूँ । कुछ समझते हो कि तुमको काशी का सामन्त क्यों बनाकर भेजा गया है ?

बन्धुल—यह तो बड़ी सीधी बात है । कोशलनरेश इस राज्य को हस्तगत करना चाहते हैं, मगध भी उत्तेजित है, युद्ध की सम्भा-

बना दे, इस जिये में यहाँ भेजा गया हूँ। मेरी बीरता पर कोराज को विद्या दे।

विरहदह—क्या ही अम्दा होता कि कोराज तुम्हारी बुद्धि पर भी अभिमान कर सकता, किन्तु बात कुछ दूसरी ही है।

बन्धुज—बद क्या ?

विरहदह—बद यह कि कोराजनेरा को तुम्हारी बीरता में मनोप नहीं, किन्तु आलस्य है। राजराजि किसी को भी इतना कष्ट नहीं देना चाहता।

बन्धुज—निर मायल बना कर मेरा क्यों सम्मान किया ?

विरहदह—यह एक पटवन्त्र है—जिसमें तुम्हारा अभिमान न जाय।

बन्धुज—विठोरी राजकुमार ! मैं तुम्हें बन्दी बनाता हूँ। सम्मान हो।

(बन्धुज काहता है)

विरहदह—आनी बिना कर्मों ; मैं ही 'वीर' हूँ !

(विरहदह नम्रता से बिना हुआ विरह जाता है ; फिर, बन्धुज भी बर्षित होकर चला जाता है ।)

(राजा का प्रवेश)

राजा—(बन्धुज)—राजि जादे दिली की भयानक हो, किन्तु देगादों बन्धुज के हृदय में भयानक बदलाव नहीं हो सकता ! यह देखें, बन्धुज माने दिया है जो योदे-वीरि सौध में रहा है ! दिया आलस्य में क्यों बन्द माने दोस्तों में लाकर दिए गए हैं !

आकाश के तारों का झुण्ड नीरव-सा है—कोई भयानक बात देखकर भी वे बोल नहीं सकते हैं, केवल आपस में इङ्गित कर रहे हैं ! संसार किसी भयानक समस्या में निमग्न-सा प्रतीत होता है ! किन्तु मैं शैलेन्द्र से मिलने आई हूँ—वह डाकू है तो क्या, मेरी भी अतृप्त वासना है । मागन्धी ! चुप, वह नाम क्यों लेती है ! मागन्धी कौशाम्बी के महल में आग लगाकर जल मरी—अब तो मैं श्यामा हूँ, जो काशी की प्रसिद्ध वारविलासिनी है । बड़े-बड़े राजपुरुष और श्रेष्ठी इसी चरण को छूकर अपने को धन्य समझते हैं । धन की कमी नहीं, मान का कुछ ठिकाना नहीं, राजरानी हो कर और क्या मिलता था, केवल सापत्न्य ज्वाला की पीड़ा !

(विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक—रमणी ! तुम क्यों इस घोर कानन में आई हो ?

श्यामा—शैलेन्द्र ! क्या तुम्हीं को वताना होगा ! मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझा-वेगा ? तुम मेरे स्नेह की परीक्षा चाहते थे—घोलो तुम किस प्रकार इसे देखा चाहते हो ?

विरुद्धक—श्यामा, मैं डाकू हूँ । यदि तुमको इसी चरण मार डालूँ—

श्यामा—तुम्हारे डाकूपन का ही विश्वास करके आई हूँ । यदि साधारण मनुष्य समझती—नो ऊपर से बहुत सीधा-सादा बनता है—तो मैं कदापि यहाँ आने का साहस नहीं करती । किन्तु शैलेन्द्र, लो यह अपनी तुकीली कटार इस तड़पते हुए कलेजे में भोंक दो !—(घुटने के बल बैठ जाती है)

विह्वल—छिन्नु रयागा । विधाम करने वाले के साथ हाथ भी ऐसा नहीं करने, उनका भी एक धर्म है । तुमने मिलने में इस लिये मैं हाथा था कि तुम रमायी हो और वह भी बारबिलासिनी, मेरा विधाम दे कि ऐसी रमणियों हाकुचों में भी भगवानक है !

रयागा—तो क्या अभी तक तुम्हें मेरा विभाग नहीं ? क्या तुम मनुष्य नहीं हो, आन्तरिक प्रेम की शीतलता ने तुम्हें कभी नहीं नहीं दिया ? क्या मेरी प्रणव-भिरा अगवस्त होगी ? जीवन की क्षणिकता में दिनरात प्रेम का समिश्र करने-करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्नेह एक बार ही मूला जाता है ? क्या बार-बिलासिनी प्रेम करना नहीं जानती ? क्या कठोर और मरु कर्म करने-करने तुम्हारे हृदय में चेतन-नोक की मुदमुदी और कोमल शब्दन नाम का भी नहीं है ? क्या तुम्हारा हृदय देवता समन्वित है ! कर्मों एक का संसार नहीं ? नहीं नहीं, प्रेमा नहीं, निवृत्त—
(हाथ चकचक गली है)—

✓ बहुत जितना, कदम बड़ा बड़ा,
तबलापने का समय नहीं है ।
अनित विह्वल में गुनेत्र केडा,
अनन्य हुआ वह अनन्य नहीं है ।
कभी लक्ष्मी कर लिये न विह्वली,
कहीं न कहीं ही कलिया की ।
तुम्हें न जाना लक्ष्मी की ?
कदा लक्ष्मी वह, कदा नहीं है ।
लक्ष्मी नहीं है कभी कोहिला,
कभी कहीं न जाना लक्ष्मी है ।

यही विरुद क्या तुम्हें सुहाता—

कि नील नीरद सदय नहीं है ! ॥

जली दीपमालिका प्राण की,

हृदय-कुटी स्वच्छ हो गई है ।

पलक-पाँवड़े बिछा चुकी हैं,

न दूसरा और, भय नहीं है ॥

चंपल निकल कर कहाँ चले अब,

हूँसे कुचल दो मृदुल चरण से ।

कि आह निकले दवे हृदय से,

भला कहो यह विजय नहीं है ?

(दोनों हाथ में हाथ मिलाए हुए जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

तीमरा हरष

मलिका का उपवन

(मलिका और महाभाषा)

मलिका—वीर हृदय युद्ध का नाम ही सुन कर नाच कटका है। शक्तिवादी लुप्तवन्द, कटुशने मारते हैं। भला मेरे शोकने से वे नह मरमे से। कठोर कर्मरथ में चलने श्यामी के पैर का कंठक भी मैं नहीं होना चाहती। वह मेरे अनुगम, मुहाग की चम्पू है। फिर भी जनका कोई स्वतन्त्र अमित्र है, जो हमारी श्रुतमंत्रा में बन्द करके नहीं रखा जा सकता। महान हरष को केवल विनाम की मरिग विना कर मोह सेना ही मी का कर्मरथ में ही है।

महाभाषा—मलिका, तेरा कहना ठीक है, किन्तु फिर भी—

मलिका—किन्तु वस्तु मरी। वे नमस्कार की धार हैं, अमि की भगवन्त श्यामी हैं, और कोला के बरेणव दून हैं। मुझे विनाम दे कि मस्तुन युद्ध में शत्रु भी बनके प्रचण्ड आयातों को रोक्ने में समर्थ हैं। मरी। एक दिन मैंने कहा कि 'ये पाषा के अमृत-तर का जल पीकर शत्रु होना चाहती हैं, पर वह सरोवर पौष की श्रमन मरी से मरी मरिग रहता है। हमारी शानि का कोई भी कमरे नह मरी पीने पका।' उनी दिन श्यामी ने कहा कि 'तभी तो मुझे वह जल कभी नह मिल मरूंगा।'

महाभाषा—मिटर कहा हुआ—

मलिका—एक दर चले से मुझे रोकर मरी चले। उन दिन

मेरा परम सौभाग्य था, सारी महजाति की स्त्रियाँ मुझ पर ईर्ष्या करती थीं। जब मैं अकेली रथ पर बैठी थी, और मेरे वीर स्वामी ने उन पाँच सौ मझों से अकेले युद्ध आरंभ किया और मुझे आज्ञा दी कि 'तुम निर्भय होकर जाओ, सरोवर में स्नान करो या जल पीलो।'।

महामाया—उस युद्ध में क्या हुआ ?

महिका—वैसी बाण-विद्या पाण्डवों की कहानी में मैंने सुनी थी। देखा, सब के धनुष कटे थे और कमरबन्द के बन्धन से ही वे चल सकते थे। जब वे समीप आकर खड्गयुद्ध में आह्वान करने लगे तब स्वामी ने कहा—'पहले अपने शरीर की अवस्था तो देखो; मैं अर्द्धमृतक घायलों पर अस्त्र नहीं चलाता।' रानी, सेनानी ने जब अपनी कमरबन्द खोली तो निर्जीव होकर गिरने लगा। यह देख सब क्रतु हो गये। फिर उन्होंने ललकार कर कहा—'वीर महाराज, जाओ अस्त्र-वैद्य से अपनी चिकित्सा कराओ, बीच में जो अपनी कमरबन्द खोलेगा, उसी की यह अवस्था होगी। महामहिलाओं की ईर्ष्या-पात्र होकर और उस सरोवर का जल स्नेह से पान कर मैं कोशल लौट आई।

महामाया—आश्चर्य, ऐसी बाण-विद्या तो अब नहीं देखने में आती! ऐसी वीरता है तो विश्वास करने की बात ही है, फिर भी महिका! राज-शक्ति का प्रलोभन, उसका आदर, अच्छा नहीं है, विप का लड्डू है, गन्धर्वनगर का प्रकाश है। कब क्या परिणाम होगा—निश्चित नहीं है। और इसी वीरता से महाराज को आतंक हो गया है। यद्यपि मैं इस समय निराहत हूँ, फिर भी मुझसे

जनकी माले दिखी नहीं है। मलिके ! मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ, इस लिए कहती हूँ—

मलिका—क्या कहा चाहती हो रानी !

महामाया—यही कि तुम आतामन रोस्टेन्ट हाथ के नाम का गुहा है, कि यदि तुम बन्धुस का वध कर मरोगे तो तुम्हारे पिछले सब कारनाम समाप्त कर दिये जायेंगे, और तुम बनेके स्थान पर मंगारनि बनाये जाओगे।

मलिका—किन्तु रोस्टेन्ट एक धीर पुरुष है, वह तुम हाथा क्यों करेगा। यदि वह झट झट मेरे युद्ध करेगा तो मुझे निश्चय है कि बीराब का भेनारनि वैसे कारनाम बन्दी बनावेगा।

महामाया—किन्तु मैं जानती हूँ कि वह ऐसा करेगा, क्योंकि मंगारनि भी वही युगी बन्य है।

मलिका—रानी ! क्या कहें। मैं आतामन की अपनै करण मेरे बहुत मही बना सकती, और उनसे लौट आने का अनुरोध नहीं कर सकती। मंगारनि का राजमण्ड कुटुम्ब कभी विहोरी नहीं होगा और राजा की आज्ञा से वह प्राण दे देना अपना धर्म समझेगा—अब एक कि शत्रु राजा शत्रु का छोड़ी तो प्रमाणित हो जाय।

महामाया—कहा बहुत, मलिका, मुझे क्या आती है और मुझे मर भी है क्योंकि तुम्हें पुत्र-वध बनाने की वही इच्छा थी। किन्तु हमसे कोटलनगे ने वैसे कारनाम किया। मुझे इसका क्या दुःख है। इसीलिए तुम्हें मरण करने चाहें थी।

मलिका—क्या कहें कम ! मेरे पिरे मेरी शक्ति कायों है

और तुम्हारे लिये तुम्हारी । तुम्हारे दुर्विनीत राजकुमार से न
व्याही जाने में, मैं अपना सौभाग्य ही समझती हूँ । दूसरे की
क्यों, अपनी ही दशा देखो, कोशल की सहिषी बनी थीं, अब—
महामाया—(क्रोध से)—मल्लिका, सावधान ! मैं जाती हूँ—

(प्रस्थान)

मल्लिका—गर्व्वीली-छी, तुम्हारे राजपद की बड़ी अभिलाषा थी
किन्तु मुझे कुछ नहीं, केवल खी-सुलभ सौजन्य और समवेदना
तथा कर्तव्य और धैर्य की शिक्षा मिली है । भाग्य जो कुछ
दिखावे ।

चोथा दरज

ज्ञान—काशी में श्यामा का गृह

(श्यामा बैठी है)

श्यामा—(ज्ञान)—शैलेन्द्र ! यह तुमने क्या किया—मेरी प्रणय-मला पर कैसा बलगत किया ? अभाग पशुपति को ही क्या पढ़ी थी कि जगने हृन्मयुद्ध के आह्वान को स्वीकार कर लिया ! चोराच का जगन मेनागति हथ में मारा गया है, अब ठगीके हाथ में पावन होकर वह भी वन्द्य हुआ । त्रिव गौलेन्द्र ! तुमने किस तरह बचाए—(स्फूर्ति है)

(समुद्रराज का प्रवेश)

समुद्रराज—श्यामा ! तुम्हारे रूप की प्रशंसा सुनकर यहाँ बड़े कामे का साहस हुआ है । क्या मैंने कुछ अनुचित किया ?

श्यामा—(रोकर हुई)—नहीं श्रीमान्, यह तो आपका घर है । श्यामा आनिन्द को भूल नहीं पावती—यह कुटीर आपकी सेवा के लिए भरीब समुद्र है । सम्भवतः आप जरूरती हैं और इस जग में मरणात्क टकित हैं । हेतिये—क्या करता है ?

समुद्रराज—(बेला हुआ)—हाँ सुन्दरी, मैं नाराज नहीं हूँ, किन्तु एक बात और का चुका हूँ । कभी तुम्हारे रूप की प्रशंसा ने तुम पर हथ बनवाया । अब जगम जगने के लिए आया हूँ । मेरा इकती भी हुआ होती ?

श्यामा—मैं जानते विजयी करती हूँ कि वहसे आप टके

होइये और कुछ थकावट मिटाइये, फिर बातें होंगी । विजया !
श्रीमान् की आज्ञा पूर्ण कर, और इन्हें विश्राम दे ।

(विजया जाती है और समुद्रदत्त को लिवा जाती है)

(एक दासी का प्रवेश)

दासी—स्वामिनी ! दण्डनायक ने कहा है कि श्यामा की आज्ञा ही मेरे लिये सब कुछ है । हजार मोहरों की आवश्यकता नहीं, केवल एक मनुष्य उसके स्थान में चाहिये । क्योंकि सेनापति की हत्या हो गई है, और यह बात भी छिपी नहीं है कि शैलेन्द्र पकड़ा गया है । तब, उसका कोई प्रतिनिधि चाहिये, जो शूली पर रातोंरात चढ़ा दिया जाय । अभी किसी ने उसे पहचाना भी नहीं है ।

श्यामा—अच्छा, सुन चुकी । जा, शीघ्र संगीत का उपक्रम ठीक कर । एक बड़े सम्भ्रान्त सज्जन आये हैं । शीघ्र जा, देर न कर—

(दासी जाती है)

✓ (स्वगत)—स्वर्ण-पिञ्जर में भी श्यामा को क्या वह सुख मिलेगा—जो उसे हरी डालों पर कसैले फलों को चखने में मिलता है । मुक्त नीलगगन में अपने छोटे छोटे पंख फैलाकर जब वह उड़ती है तब जैसी उसकी सुरीली तान होती है, उसके सामने तो सोने के पिंजड़े में उसका गान क्रन्दन ही है । मैं उसी श्यामा की तरह जो स्वतंत्र है, राजमहल की परतंत्रता से बाहर आई हूँ । हँसूँगी और हँसाऊँगी, रोऊँगी और रुलाऊँगी ! फूल की तरह आई हूँ, परिमल की तरह चली जाऊँगी । स्वप्न की चन्द्रिका में मलयानिल

की मंज पर सेहूंगी । कुनो की भूल से अद्वारा बनाऊंगी, चाहे
रामने बिनती ही बहिर्यो क्यों न कुचननी पड़े ! चाहे बिनती
ही के प्राण साये, मुझे हृद बिना नहीं । कुम्हसाकर, कुल की
कुचल देने से ही मुझे सुख है ।

(समुद्रराज का प्रवेश)

रामाना—(गरी होकर)—चोटे कष्ट तो नहीं हुआ ? दासियों
दुर्गति होनी हैं, चमा बोजियेगा ।

समुद्रराज—सुन्दरियों की तुम महरानी हो और तुम बास्तव
में अभी नष्ट रहती भी हो । तब जैसा मरना होगा, वैसा आठिथ्य
की भी सम्भवना है—यदा सुख भिजा, हृदय शीतल हो गया !

रामाना—आज तो मेरी प्रशंसा करके मुझे बार बार
भविष्य कहते हैं ।

समुद्रराज—सुन्दरी ! मैं कह तो नहीं सकता, किन्तु मैं बिना
मृत्यु का शयन हूँ । समुद्र का चोमत कष्ट मे कुल सुनाही ।

रामाना—जैसी चाहता ।

(बजने वाले आते हैं)

✓ (गन्ध की गन्ध)

जहाँ है गन्ध, वहाँ से जहाँ अभीना गन्ध कायम का ।

गन्ध कायम का, गन्ध कायम कायम का ॥ ४० ॥

कुनो का कायम विली गले समुद्र सुन्द,

विना गरी है विना जीवन की विना, विना कर्मिभू,

जहाँ है विना के कायम का ॥

गन्ध कायम का, गन्ध कायम कायम का ॥ ४० ॥

उपा सुनहला मंघ पिलाती, प्रकृति बरसती फूल,
मतवाले होकर देखो तो, विधि निषेध को भूल,
भाज कर लो अपने मन का ।

नन्दन कानन का, रसीला नन्दन कानन का ॥ च० ॥

समुद्रदत्त—अहा ! श्यामा का-सा कण्ठ भी है । सुन्दरी,
तुम्हारी जैसी प्रशंसा सुनी थी तुम वैसी ही हो ! और एक बार
इस तीव्र मादक को और पिला दो । पागल हो जाने के लिये
इन्द्रियाँ प्रस्तुत हैं ।

(श्यामा इक्षित करती है, सय जाते हैं)

श्यामा—तुम्हारी कीजिये, मैं इस समय बड़ी चिन्तित हूँ, इस
कारण आपको प्रसन्न न कर सकी । अभी दासी ने आकर एक
बात ऐसी कही है कि मेरा चित्त चञ्चल हो उठा । केवल शिष्टाचार-
वश इस समय मैंने आपको गान सुनाया—

समुद्रदत्त—वह कैसी बात है, क्या मैं भी सुन सकता हूँ ?

श्यामा—आप अभी तो परदेश से आ रहे हैं, मुझसे कोई
घनिष्टता भी नहीं, तब कैसे अपना हाल कहूँ !

समुद्रदत्त—सुन्दरी ! यह तुम्हारा सङ्कोच व्यर्थ है ।

श्यामा—मेरा भाई किसी अपराध में बन्दी हुआ है । और दण्ड-
नायक ने कहा है कि यदि रात भर में मेरे पास हजार मोहरें पहुँच
जायँ तो मैं इसे छोड़ दूँगा, नहीं तो नहीं । (रोती है)

समुद्रदत्त—तो इसमें कौन-सी चिन्ता की बात है ! मैं देता
हूँ; इन्हें भेज दो ।—(स्वगत)—मैं भी तो षड्यन्त्र करने आया
हूँ—इसी तरह दो चार अन्तरङ्ग मित्र बनेंगे, जिसमें समयपर

काम करने । इन्होंने यह भी समझ लिया—चोरे बिना नहीं ।

श्यामा—(मोदों की धैरी देखकर)—तो दाम्नी पर दया करके हमें से छुड़ये, क्योंकि मैं जिस पर विश्वास करके इतना धन भेज दूँ । और, यदि आप को पश्चाने जाने की राह हो तो मैं कारवा आभी बेरा भी बहुत दे सकती हूँ ।

मनुदत्त—अभी मोदों तो मेरे पास हैं, इनको क्या कारवा करता है ।

श्यामा—आपकी कृपा है, वह भी मेरी ही है, किन्तु उन्हें ही से जाहने, नहीं तो आप हमें भी वास्तविकताओं की एक बात समझाएंगे ।

मनुदत्त—अब यह कैसी बात—मुन्दी श्यामा, तुम मेरी होंगी बहुत ही । मुन्दीने जिसे यह बात प्रस्तुत है । आप इतनी है कि वह मुझे पताचानता है ।

श्यामा—नहीं, यह तो मेरी बहुत ही बात आपकी माननी ही होगी । और इतना बड़ा मुझ पर न कीजिये कि मैत्री में बहुत ही की गयी जाने लगे और हम लोगोंकी एक दूसरे पर राहों करने का व्यवस्था बिछे । मैं आपका बेरा बहुत देती हूँ ।

मनुदत्त—अब तो ! ऐसा ही होगा । मेरा बेरा-मैत्री-बेरा ही ।

(श्यामा बेरा बहुत ही है और मनुदत्त को बहुत समझती है)

(मनुदत्त बेरा ही है और मनुदत्त को बहुत समझती है)

श्यामा—जाओ बलि के बकरे, जाओ ! फिर न आना ।
मेरा शैलेन्द्र, मेरा प्यारा शैलेन्द्र !—

✓ तुम्हारी मोहिनी छवि पर निछावर प्राण हैं मेरे ।
अस्त्रिल भूलोक बलिहारी मधुर मृदुहास पर तेरे ॥

(पट-परिवर्तन)

पौषर्षी हरण

स्थान—मेनावति बन्धुन का गृह

(मतिदा और शमी)

मतिदा—मंगर में गियों के लिये यति ही सब कुछ दे, विष्णु हाथ ! आज मैं बगी मोहाग से बचिव हो गई हूँ ! इतना परधरा रहा है, बहुत भग आता है—एक निर्दय बेगना, सब इन्द्रियों को अपेक्षन और शिथिल बनाये दे रही है । हे आह ! (दार दर और दिक्कत लेकर)—हं प्रभु ! मुझे बन दो—विपत्तियों को मदन करने के लिये—बन दो ! मुझे विद्या हो कि तुम्हारी शरण जाने पर कोई भय नहीं रहना । विपत्ति और दुःख सब आनन्द के हाथ बन जायें हैं, फिर मांसादिक आनन्द हमें नहीं दग मचने दें । मैं जानती हूँ कि मानव-हरण अपनी दुर्बलताओं में ही मरत होने का मंग बनाता है—किन्तु मुझे बन बनावट में, दग दग में, बचा लो । शक्ति के लिये मादम हो—बन दो !!

शमी—अतिथि, प्रीत्य धारण कीजिये !

मतिदा—मरता ! प्रीत्य न होना तो अब सब यह हरण पट मला—यह शक्ति निम्न हो जाता ! यह वैदिक दुःख मारी शक्ति के लिये देना बहुत अपेक्षा दे यह किसी भी को अनुभव न करता हो !

शमी—अतिथि, इस दुःख में भगवान ही मादमना दे लहेगे—अती का आनन्द दे ।

मतिदा—एक बन बनना हो चाहें मरता !

दासी—क्या स्वामिनी ?

मल्लिका—सद्धर्म के सेनापति सारिपुत्र मौद्रलायन को कल मैं निमन्त्रण दे आई हूँ, सो आज वे आवेंगे। देख, यदि न हुआ हो तो भिन्ना का प्रबन्ध शीघ्र कर, जा शीघ्र जा। (दासी जाती है) तथागत ! तुम धन्य हो तुम्हारे उपदेशों से हृदय निर्मल हो जाता है। तुमने संसार को दुःखमय बताया और उससे छूटने का उपाय भी सिखाया। कीट से लेकर इन्द्र तक की समता घोषित की। अपवित्रों को अपनाया, दुखियों को गले लगाया और अपनी दिव्य करुणा की वर्षा से विश्व को आप्लावित किया—अमिताभ, तुम्हारी जय हो !

(सरला आती है)

सरला—स्वामिनी ! भिन्ना का आयोजन सब ठीक है। कोई चिन्ता नहीं, किन्तु.....

मल्लिका—किन्तु नहीं—सरला ! मैं भी व्यवहार को जानती हूँ, पर आतिथ्य परम धर्म है। मैं भी नारी हूँ, नारी के हृदय में जो हाहाकार होता है, वह मैं अनुभव कर रही हूँ। शरीर की धमनियाँ खिंचने लगती हैं। जो रो उठता है, उस भी कर्तव्य करना ही होगा।

(सारिपुत्र और आनन्द का प्रवेश)

मल्लिका—जय हो ! अमिताभ की जय हो—दासी वन्दना करती है। स्वागत !

सारिपुत्र—शान्ति मिले—सन्तोष में वृप्ति हो। देवी ! हम आगये—भिन्ना प्रस्तुत है ?

मनिहा—देव ! यथासक्ति प्रभुन है । पावन पीतिये ।
 यजिये ।

(हमारी जगत् जगत् है, मरिदुहा पर पुष्पांगी है : दोनों बंधने हैं और
भोजन करत है : हमने मरिदुहा मरिदुहा-प्राप्त हमारी के हाथ में गिर कर डर
जाया है : मरिदुहा हमें हमारा जाने को बहनी है :)

आनन्द—देवि ! तुम्हीं का व्यवसाय करना—तिननी
 बन्धुने कहती हैं, वे सब पितामहने ही के लिये । गरीब, कमका परि-
 णाम था, तममें सेवारी तुम्हीं को कहते हैं मात्र था ।

सद्रिडा—यथायं हे ।

शास्त्रिपुत्र—आजन्म 'क्या मुमने भयमा कि मदिहा शमी
 पर मरु होगी? क्या मुमने आमी मदी पदिबाना? मरु-वात्र
 दूहने से इन्हे क्या सोच होगा—आमी के मारे जाने का समाचार
 आमी हम लोगों के जाने के थोड़ा ही देर पहले आया है, किन्तु
 वह भी हमें अपने अपने-अपने विषयों मदीं बर मचा! तब, यह
 मैं एक धातुवात्र था । (मतिहा से)—शान्ति । बहाने, तु
 मंगा को पत्रि करण है । बंधा, मेरा पैदल मरादनीय है ।

१०१ अ, इस मूर्तिपूजा भवेत्सदादायकः सं बन्धु की शिष्टा लो ।

काम्य—सर्वसाधनो (आत्मसुखादौ) । यात्र हर्षे विश्राम
 इत्यादि केवल काम्य भगवत् का हर्षे मे हो धर्म पर प्रत्यक्ष
 मर्त्य हो ज्ञान—एव विना सुख मे विज्ञान है ।

सर्वदा—वर्तमान के समस्त वर्गों ने हाथों की मध्याह्न
की योजना की है। अब मुझे यह सोचनी पड़ेगी कि
'वर्ग' है। यह योजना में वर्गीकृत न करने, बल्कि मानव का

पवित्र अधिकार है, शान्तिदायक धैर्य का साधन है, जीवन का विश्राम है। (पैर पकड़ती है)—महापुरुष ! आशीर्वाद दीजिये कि मैं इससे विचलित न होऊँ।

सारिपुत्र—उठो देवी ! उठो ! तुम्हें मैं क्या उपदेश करूँ ? तुम्हारा चरित्र, धैर्य का—कर्तव्य का—स्वयं आदर्श है। तुम्हें अखण्ड शान्ति है। हाँ, तुम जानती हो कि तुम्हारा शत्रु कौन है—तब भी विश्वमैत्री के अनुरोध से, उससे केवल उदासीन ही न रहो, प्रत्युत द्वेष भी न रखो।

(महाराज प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेन०—महास्थविर ! मैं अभिवादन करता हूँ। मल्लिकादेवी, मैं क्षमा माँगने आया हूँ।

मल्लिका—स्वागत, महाराज ! क्षमा किस बात की ?

प्रसेन०—नहीं—मैंने अपराध किया है। सेनापति बन्धुल के प्रति मेरा हृदय शुद्ध नहीं था—इसलिये उनकी हत्या का पाप मुझे भी लगता है।

मल्लिका—यह अब छिपा नहीं है महाराज ! प्रजा के साथ आप इतना छल प्रवञ्चना और कपट व्यवहार रखते हैं ! धन्य हैं।

प्रसेन०—मुझे धिक्कार दो—मुझे शाप दो—मल्लिका ! तुम्हारे मुखमण्डल पर तो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का चिन्ह भी नहीं है। जो तुम्हारी इच्छा हो, वह कहो, मैं उसे पूर्ण करूँगा—

मल्लिका—(हाथ जोड़कर)—कुछ नहीं, महाराज ! आज्ञा दीजिये कि आपके राज्य से निर्विघ्न, चली जाऊँ। किसी शांतिपूर्ण स्थान में

अज्ञातपुत्र

रहें । ईश से आपका हृदय प्रभाव के मध्यान्ह का सूर्य हो रहा ।
हसती मीपगुहा से बचकर किमी छाया में विभाम रहें । और
मी में नहीं चाहती ।

सारीपुत्र—मूर्तिमगों करले ! मुग्धारी विजय है ।

(रामा हाथ जोड़ता है)

(पट-परिवर्तन)

छठा दृश्य

महाराज विम्बसार का गृह

(विम्बसार और वासवी)

विम्बसार—रात में ताराओं का प्रभाव विशेष रहने से चन्द्र नहीं दिखाई देता है और चन्द्रमा का तेज बढ़ने से नारे मव फीके पड़ जाते हैं, क्या इसी को शुक्र पक्ष और कृष्ण पक्ष कहते हैं ? देवी ! कभी तुमने इस पर विचार किया है ?

वासवी—आर्य्यपुत्र ! हमें तो विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाये है, जितना चाहता है उतना ही प्रकट करता है । कभी निशाकर को छाती पर लेकर खेला करता है, कभी तारों को बिखेरता और कृष्ण कुहू के साथ क्रीड़ा करता है ।

विम्ब०—और कोमल पत्तियों को, जो अपनी डाली पर निरीह लटक करती हैं, प्रभञ्जन क्यों झिझोड़ता है ?

वासवी—उसकी गति है, वह किसी को कहता नहीं है कि तुम मेरे मार्ग में अड़ो, जो साहस करता है, उसे हिलना पड़ता है । नाथ ! समय भी इसी तरह चला जा रहा है, उसके लिये पहाड़ और पत्तों घरावर हैं ।

विम्ब०—फिर उसकी गति तो सम नहीं है । ऐसा क्यों ?

वासवी—यही समझाने के लिये बड़े बड़े दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्याएँ की हैं, फिर भी प्रत्येक नियमों में अपवाद लगा दिए हैं । यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपवाद नियम पर है या नियामक पर । सम्भवतः उसे ही लोग बवंडर कहते हैं ।

विष्णुमातृ—तब तो देवी ! प्रत्येक अमण्मावित घटना के मूल में यही बवंडर है । मच तो यह है कि विष्णुमातृ में स्थान स्थान पर बलयापक है ; जल में जंगे और बहते हैं, लाल पर लाल बवंडर बहते हैं, शान्त में विस्तृत, समान में उन्नत-दुःख बहते हैं और धर्म में पाव बहते हैं । चाहे इनके निषेधों का अपवाद करो चाहे बवंडर—यही न ?

(छटना का प्रवेश)

विष्णुमातृ—यह तो हम लोग तो बवंडर की बातें करते थे, तुम यहाँ कैसे पहुँच गई ! राजमाता महादेवी को हम दरिद्र-पुत्री में क्या आधारपथता हुई ?

छटना—मैं बवंडर हूँ—इसी रीति जहाँ मैं आती हूँ अमण्मा-विन रूप में जाती आती हूँ और देवता आती हूँ कि हम प्रवाद में किनी सामर्थ्य है—इसमें आवर्त अपवाद कर जाती हूँ कि नहीं ।

राजमाता—छटना ! कहिये ! तुमको क्या हो गया है ?

छटना—प्रवाद—और क्या ! अभी सम्पूर्ण ग्रीष्म हुआ, हमने बरफ बरफ चुकी हो, और भी कुछ रोव दे ?

राजमाता—कहाँ, अज्ञान तो अच्छी तरह है ? तुमसे गाँ दे ?

छटना—क्या पत्रगी हो ! समुद्र-तट आते में मारा हो गया । कोणार्क और आगरा में कुछ का जल हो रहा है । अज्ञान बगलें गया है । अज्ञान मर में जागृत है ।

विष्णुमातृ—तुम में क्या हुआ ?—(दूर चला गया)—छटना मुझे क्या ?

झलना—शैलेन्द्र नाम के डाकू ने इन्द्र युद्ध में आज्ञान करके फिर धोखा देकर फौज के सेनापति को गाल डाला। सेनापति के मर जाने से सेना चकराई थी, उसी समय अज्ञात ने आक्रमण कर दिया और विजयी हुआ—फारसी पर अधिकार हो गया।

वासवी—तब इतना चकराती क्यों हो ? अज्ञात को रण-दुर्मद साहसी बनाने के लिए ही तो तुम्हें श्वनी अस्त्र मिला था। राज-कुमार को तो ऐसी अस्त्र शिक्षा तुम्हीं ने दी थी। फिर उलाहना क्यों ?

झलना—उलाहना क्यों न हूँ—जब कि तुमने जान बूझ कर वह विप्लव खड़ा किया है। क्या तुम इसे नहीं दबा सकती थीं, क्योंकि वह तो तुम्हारे पिता से तुम्हें मिला हुआ प्रान्त था।

वासवी—जिसने दिया था यदि वह ले ले तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उसे न लौटा दूँ ? तुम्हीं बतलाओ कि मेरा अधिकार हीन कर जब आर्य्यपुत्र ने तुम्हें दे दिया, तब भी मैंने कोई विरोध किया था ?

झलना—यह ताना सुनने में नहीं आई हूँ। वासवी, तुमको तुम्हारी असफलता सूचित करने आई हूँ।

विम्बसार—तो राजमाता को कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी ? वह तो एक सामान्य अनुचर कर सकता था।

झलना—किन्तु वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेश भी अच्छी तरह से नहीं कहता। तुम्हारे मुख की प्रत्येक सिकुड़न पर इस प्रकार लक्ष्य नहीं रखता, न वो वासवी को इतना प्रसन्न ही कर सकता।

विम्बसार—(खड़े होकर)—झलना ! हमने राजदण्ड छोड़

दिया है किन्तु धनुरधरा ने अभी इसे नहीं पहिचान लिया है ।
मदन को भी भौंसा देनी है । चारम मारी !—बली जा । तुम्हें
क्या मरी — क्यों निरालीबी रह !

बधारी—बहिन आओ, मित्रासन पर बैठ कर रात कार्य
देखो । स्वयं लगावने में मुझे क्या सुख मिलेगा । और बधिक मुझे
क्या कहूँ । तुम्हारी सुधि ।

(छाना जाती है)

बधारी—(आर्चन करती है)—

ॐ वाग सुधनि दीजिये ।

आनन्ददाम की कदवा में लीन कर ।

जीवन निरुद्ध की, अंशुनि दीजिये ॥

वाग सुधनि दीजिये ॥

(जीवक का प्रवेश)

जीवक—अब हो देव !

विशदत्ता—जीवक, आगत । कन्तु, तुम बड़े समय पर
आये । इस समय इतना बड़ा दुःख था । कोई मया समाचार
सुनाओ ।

जीवक—भीतरही है समाचार जो शिवर भोग हुआ है ।
अब समाचार यह है कि अन्तही का सब पदपत्र मुख मया
और आनन्दमयी चन्द्रमयी का पूर्ववत् फिर लीन हो गया । और
यह कुछ अन्तही अन्त ही क्या मया कर कर मरी ।

विशदत्ता—वैरी क्या ! क्या बने । इनके दिनों सब बड़ी दुःखी
रही, क्यों जीवक !

वानगी—और कोशल का क्या समाचार है ? विरहक को भाई ने क्षमा किया, या नहीं ? यह आजकल कहाँ है ?

जीवक—वही तो काशी का शैलेन्द्र है । उसने भगधनरेश— नहीं नहीं—कुमार कुलीक से मिलकर कोशल सेनापति बन्धुल को मार डाला, और स्वयं इधर उधर विद्रोह करता फिर रहा है ।

वासुकी—यह क्या है ! भगवन ! क्यों को यह क्या सूझी है ? क्या यही राजकुल की शिक्षा है ?

जीवक—और महाराज प्रसेनजित पायल होकर रणक्षेत्र से पलट गये । फिर कोई नई याव हुई हो तो मैं नहीं जानता ।

विन्यसार—जीवक ! अब तुम विश्राम करो । अब और कोई समाचार सुनने की इच्छा नहीं है । संसार भर में विद्रोह, संघर्ष, हत्या, अभियोग, पटयन्त्र और प्रतारणा है । यहाँ सब तुम सुनाओगे, ऐसा मुझे निश्चय हो गया । जाने दो । एक शीतल निश्वास लेकर तुम विश्व के बाल्याचक्र से अलग हो जाओ । और इस पर प्रलय के सूर्य की किरणों से तप कर मलते हुए गोले लोहे की बर्या होने दो । अविश्वास की आंधियों को सरपट दौड़ने दो । पृथ्वी के प्राणियों में अन्धकार पड़े, जिससे रूढ़ होकर लोग अनौश्रवादी हो जायें और प्रति दिन नई समरया हल करते करते छुटिल कृतघ्न जीव मूर्खता की धूल उड़ावें—और विश्वभर में इस पर एक उन्मत्त आदृष्ट हो ।

(उन्मत्त भाव से जाता है)

(पट-परिवर्तन)

सातवाँ दृश्य

मान—दोराण की सीमा

(मजिद की कुली में मजिद और दोराण)

दोराण—मजिद, मैं अभी इसका अनुमोदन नहीं कर सकता। अगर पहले इसे बहुत धर्म समझें, किन्तु मजिद का जीवन दान करना अभी भी छोड़ दिखकर नहीं है।

मजिद—दोराण ! तुम्हारा एक अभी बहुत गौरव रहा है। तुम्हारी प्रतिदिना की बरगला देगवनी है, किन्तु मोथो, रिचारी, त्रिपट्टे इत्यादि में विपरीतों के द्वारा बदला का बटुका हुआ है, इसे समझा कर समझा क्या अभी अपने कर्मों से विचलित कर सकता है ?

दोराण—मान देवी है। और मजिद से मिल जो केवल बरगला के आकार पर मिल है, यह सब जगत् की बातें मोथ समझती हैं। किन्तु, हम इस संवत्सर जगत् के जीव हैं, जिनमें कि जगत् में प्रतिनिधित्व है। अहाँ किसी को देग में बंद हो जाने पर वह बंदगी मानने वाले की ओर लौटने की चेष्टा करती है। हम जिनके हैं तो नहीं बोलें कि हम समस्तमान धर्मों की ओर दुर्गम होकर जगत् की रक्षा करने की कोशिश करनी थी।

मजिद—दोराण ! मैं अभी यह मानती हूँ। बदला की रिचय-मजिद के जीवें इतने बरगला करने का यह विचार करने पर नहीं करीबन मजिद का है। यह सब बातें भी दीये

इतने का अन्वेषण नहीं । शिवाजी सैनिक ने आत्मनः मरण जीवन का प्रतिदान करेगा—परायण !

कानावरा—तब मैं जाना हूँ—जैसी इच्छा ।

मल्लिका—ठहरो, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ । क्या तुम इस युद्ध में मर्त्य मार्ग में ? क्या तुमने अपने हाथों में जान बूझ कर पोशाल की पराजिता होने नहीं दिया ? क्या तुम सैनिक के समान ही तुम इस रणक्षेत्र में मरे थे और तब भी पोशालनरेवा की यह दुर्दशा हुई ? जब तुम इस जगु सत्य की पालने में असमर्थ हुए, तब तुमसे और घदान मार्ग त्याग की क्या आशा की जाय ? तुमने विनाश है कि यदि पोशाल की सेवा अपने सत्य पर रहती तो यह दुःख पटना न होने पाती ।

कानावरा—इसमें मेरा क्या अपराध है ? जैसी सबकी, वैसी ही मेरी भी इच्छा थी । (कुटी में आकर धीमेधन विद्वत्ता है)

प्रसेन—देवी ! तुम्हारे वक्ताओं का योग मुझे अगस्त हो रहा है । तुम्हारी शीतलता ने इस जलछे हुए लोहे पर विजय प्राप्त कर ली है । बार बार जमा मीनने पर भी हृदय का सन्तोष नहीं होता । अब मैं आवृत्ती जाने की आशा चाहता हूँ ।

मल्लिका—सम्राट् ! क्या आपको मैंने खंडी पर रखा है ? यह कैसा प्रश्न ? वही प्रसन्नता से आप जा सकते हैं ।

प्रसेन—नहीं, देवी ! इस दुःखकारी के पैरों में तुम्हारे वक्ताओं की धेड़ी और हाथों में समा की दृष्टिकर्मी पड़ी है । जब तक तुम कोई आशा देकर इसे मुक्त नहीं करोगी, यह पड़े जाने में असमर्थ है ।

महिषा—बारावन ! यह तुम्हारे मरणाद् हैं—जाओ, इन्हें सात्वती नक मज्जान पहुँचा दो, मुझे तुम्हारे बाहुबल पर भरोसा है । और चरित्र पर भी ।

प्रमत्तः—और बारावन, मेलावलि बन्धुन का भागिनेय ?

बारावन—हाँ भ्रमार् ! वही बारावन अभिषादन करता है ।

प्रमत्तः—बारावन ! माता ने आज्ञा दी है, तुम मुझे बल पहुँचा दोगे ? देना जननों की यह मूर्ति —विषय में बचे की तरह जितने मेरी सेवा की है । क्या तुम इसमें मग्न करने हो ? यदि तुमने इन दिव्य बरतों की मक्ति नहीं दे तो मुझारा जीवन पण्य है ।
(मतिरा का पैर पकड़ता है)

महिषा—बटिने मरणाद् ! बटिने । मरणाद् भद्र करने का चारधो भी अधिकार नहीं है ।

प्रमत्तः—वही कष्टा हो तो मैं ईपंचागण को अपना मेलावलि बनाने और इसी बीच में लगीय मेलावलि बन्धुन की प्रतिकूल देखाकर अपने दुश्मन का प्रयत्न करूँ । देवी ! मैं लक्ष्मी काग हूँ कि मरणाद् बन्धुन के साथ मैंने और आगत विषय है । और आज्ञा मुझे एक भी बटु बन्धुन न कराने समझा कराने दण्ड दिया है, हृदय में इसकी बरी आत्मा है । एक बार देवी ! एक अभिमान दे दो, जिससे मरणाद् की आज्ञा पालन हो एक और बन्धुन आज्ञा जिससे मैं मुक्त पावें ।

महिषा—अर्जुन के बल-बटो-द्वारा पर जो बटिप-मेला-विषय दिया है वे क्या बनी मिलें ? यदि आज्ञा की आज्ञा दे कर बल-बटो के बल-बटो-द्वारा विषय बटिप-मेला, जो मरणाद् में

अबल होकर दूसरों के हृदय को शक्ति दें । दूसरों को सुखी बना कर मुझे अपने का आनन्द कीजिये ।

प्रसेनजित—आगरा आशीर्वाद मन्त्र हो, अलो आराधना !
(दोनों समस्त करके जाते हैं)

महिला—(आर्पण करती है)—

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

महर्षि-विश्वामित्र !

है दुःख का भयंकर यन्त्र ।

यह भी शक्ति, इसे वहीं दिखाई देती ।

सब लौट आये हैं इसी भयंकर यन्त्र में ।

अभीष्ट न हो शक्ति विश्वामित्र !

अज्ञात—(प्रवेश करते)—कहाँ गया ? मेरे कोष का कन्डू, मेरी मूर्त का विजय, कहाँ गया ! रमणी ! शक्ति बता—यह यमंडी कोशल सम्राट् कहाँ गया ?

महिला—शान्त हो । सन्तुष्ट हो । शान्त हो । तुम किसे खोजते हो ? बैठो । अज्ञात मुन्दर मुक्त, इसमें भयानकता क्यों ले आते हो ? सज्ज मुन्दर यदन को क्यों विवृत करते हो ? शीतल हो, विवृत हो । देखो, यह अशोक की शीतल छाया तुम्हारे हृदय को घेरना बना देगी—बैठ जाओ ।

अज्ञात—(मुग्धता से बैठा है)—क्या यहाँ प्रसेनजित नहीं रहा, अभी मुझे सुमन ने समाचार दिया है ।

महिला—हाँ, इसी आधम में उनकी सुश्रूषा हुई है । और वे स्वयं होकर अभी अभी गये हैं । पर तुम उन्हें लेकर क्या करोगे ?

बीजी देखा, भीम राजन, लम, जिह चिरागी, गूहा प्यार,
छाया मरणा जितना है फिर भी परिचय देते मौजूदा ॥

मुझसे परिचय न पूछो नियतम् ! न पूछो !

(ईश्वर होने का नाम बताया है)

ईश्वर—मोड़ में बेमुच हो जाता हूँ—इस संगीत के साथ
मौलाना और मुगल ने मुझे अधिभूत कर लिया है । तब यही गद्दी ।

(दोनों पान डालते हैं, रसमा सो जाती है ।)

ईश्वर—(चला)—बाती के तम मंकीलं धवन में सिपहर
रहने रहने बिना बचन गया था । समुद्रग के मारे जाने का मैं ही
कागज था, इस शिरो बहाल तब से अज्ञानशत्रु से सिपहर कोई
कार्य भी नहीं कर सकता था । इस पामरि की गौर में मुँह
दिल पर डिगने दिन रिगारे ? हमारे माथों बालों में अब यह
जिज्ञासा हो गयी है । यह प्रेम रिगार में ही लपकता हुआ
का गयी है । अब नहीं, इस गौर में अब नहीं गिरा गूँगा । कर्म-
रूप के बोझ और अनोखे, बंदरों को बटोरना से—निर्दया
से—हमारा ही पड़ता है । तब, काम से, अन्धता समझ करों—
(रसमा मोड़ी हुई लपकत लपकत दौलती है, तब मैं बीहक का गली है—)

रसमा—ईश्वर.....

ईश्वर—क्यों दिने ?

रसमा—क्या कहती है ।

ईश्वर—क्या रिश्वरी ?

रसमा—कन ।

शैलेन्द्र—प्रिये ! जल तो नहीं है । यह शीतल पेया है, पी लो ।

श्यामा—विष ! ओह मिर बूरा रहा है । मैं पकृत पी चुकी हूँ । अब...जल...भयानक स्वाद । क्या तुम मुझे जलने दूँगे, दलाहल की मात्रा पिला दोगे !—(भय-निर्मोहित चेहरे से देखते हुई)—

अमृत हो जायगा, गिर भी पिला दो हाथ से अपने ।

पलक भर छक चुके हैं हम, वसी में बस लगे कैंपने ॥

विकल हैं इन्धियाँ, हों देगते हम रूप के सपने ।

जगत विसृष्ट, हृदय पुनरुत्थित लगा तब नाम है अपने ॥

शैलेन्द्र—छिः ! यह क्या कह रही हो ? कोई स्वप्न देख रही हो क्या ? लो थोड़ी पी लो । (पिला देता है)

श्यामा—मैंने अपने जीवन भर में तुम्हीं को प्यार किया है । तुम मुझे थोप्या तो नहीं दोगे ? ओह ! कैसा भयानक स्वाद है । वसी स्वप्न की तरह.....

शैलेन्द्र—क्या पक रहा हा । सो जाओ । विहार से थकी हो ।

श्यामा—(भूलत चन्द्र हिये दूये)—क्यों यहाँ ले आये ! क्या घर में सुख नहीं मिलता था ?

शैलेन्द्र—कानन की हरी भरी शोभा देखकर जी बहलाना चाहिये, न कि तुम इस प्रकार विछली जा रही हो !

श्यामा—नहीं, नहीं, मैं भाँस नहीं खोलूँगी, हर लगता है, तुम्हीं पर मेरा विश्वास है । यहीं रहो ।

(निद्रित होती है)

गैरेन्द्र—(गल)—मो गह ! आह ! हृदय में दाह हो
जाती है, ऐसी मुहुनार बन्धु ! नहीं नहीं ! किन्तु विद्वान् के
पर हो हमने अनुद्वन्द के प्रारु जिये ! यह नागिन है, पाले ॥
नहीं ! और हमें यमा प्रविष्टोप लेना है । दाहप्रि से बह
चैतना है, हमने आह मुहुनार हृदय कुम्भन हो अदवा विद्वान्
हृद ! दाहप्रि या अन्यह छोटे छोटे फूलों को बधा कर
बोला । मो बम.....

रवाम—(जाकर)—गैरेन्द्र ! विद्याम ! देगो वही
आह अदवाक (मोह कर लेती ॥)

गैरेन्द्र—नह देर क्या ! कहीं कोई का जापम रि
(रवाम का गला बँटा है, वह अद्वन्द कर के तिष्ठित हो जाती है ।)
बम पले । पर नहीं, पन की भी आवश्यक्ता है—

(सामूहिक उठार कर जाता है)

(गैरेन्द्र कुछ और जापम का प्रयेन)

आनन्द—भगवन् ! देवद्वन्द ने मो आव बड़े अद्वन्द मपारे ।
नपायन को काल्हिन और अदमानिन करने में कौन से उद्व
नहीं दिये । हमें इसका पन मित्रता चाहिये ।

गैरेन्द्र—नह मेरा काम नहीं—वेदना और संशयों का
दुःख अनुभव करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है । हमें करने अर्थात्
हमों के अतिन कर्मों को विचारने में भी विन
पड़ती है ।

आमी विद्या को अद्वन्द हमने विद्या

यह अपवाद लगाना चाहती थी—केवल आपकी मर्यादा गिरा देने की इच्छा से ।

गौतम—किन्तु सत्य-नूतन को कहीं कोई चलनी से ठक लेगा ? इस क्षणिक प्रयास में सब बिलीन हो जायेंगे । मुझे अकार्य करने से क्या लाभ ! धिन्धा का भी देखो, अब यह घात चुल गई कि उसे गर्म नहीं है, वह केवल मुझे अपवाद लगाना चाहती थी । तभी उसकी कैसी दुर्गति हुई । शुद्ध बुद्धि की प्रेरणा से स्वतर्क करते रहना चाहिये । दूसरों की ओर उदासीन हो जाना ही शत्रुता की पराजय है । आनन्द ! दूसरों का अप-कार सोचने से अपना हृदय भी कलुषित होता है ।

आनन्द—यथार्थ है प्रभो,—(ग्याता के घर को देख कर)—अरे यह क्या ! चलिये गुरुदेव ! यहाँ से शीघ्र हट चलिये । देखिये, अभी यहाँ कोई काण्ड संघटित हुआ है ।

गौतम—अरे यह तो कोई स्त्री है, उठाओ आनन्द ! इसे सहायता की आवश्यकता है ।

आनन्द—तथागत ! आपके प्रतिद्वन्द्वी इससे बड़ा लाभ उठावेंगे । यह मृतक स्त्री विहार में ले जाकर क्या आप कलङ्कित होना चाहते हैं ?

गौतम—क्या करुणा का आदेश कलङ्क के दर से भूल जाओगे ? यदि हम लोगों की सेवा से यह कष्ट से मुक्त हो गई तब ? और मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि यह मरी नहीं है । आनन्द, विलम्ब न करो । यदि वह यों ही पड़ी रही तब भी तो विहार के पीछे ही है । उस अपवाद से हम लोग कहीं बचेंगे ।

आनन्द—बनु, ऐसी आशा !

(उभे उठा कर दोनों जाने दें)

(सीन्ड्र का प्रवेश)

सीन्ड्र—जो बोई जरा छे गया । चत्तों में भी उमके पर
में जो बुद्ध था, छे थावा । अब बहों थाता थादिये । भावली
ही थाता ही राजधानी दे गर गरी अब एक एग भी में नहीं
ठहरेता । भाता में जेट दो बुद्धी, इनना हाथ भी हाथ लगा ।
बस बातावन मे मितावा हुआ एक बार ही गोपे राजगुरु । रहा
आता मे मितावा । बिन्नु अब बोई बिन्ना नहीं, इगमा तो
रही नहीं, कौन इगमा गोरेगा । समुद्रग के निचे में भी बोई
बस बना देगा । तो अबे, इन संपासाय में बुद्ध भीड़-भी एकत्र
ही रही है, गरी टहरना अब ठीक नहीं ।

(जाता है)

(एक मित्र का प्रवेश)

मित्र—आचार्य ! अब गुन भी जी बड़ी और इननी ही
देर में मुझे मे बिन्ना आगुरु पीना दिया था । समय रिहार
अनुपमे में जा गया था । मुष्ट अनया को बसाइने के निचे बह
रहा था कि, जगन्नी जीवम मे ही जमे जात जाता । इन हाथा
मे जीवम की ही बोई बुद्धी इगमा थी । बिन्नु जमके गम्य होने
ही गव के भूरे में बसिता लग गया । कौर अब तो लोग
करते हैं कि थाता है, जीवम नई मरता है, गरी दूरे की को
जित दिता है मनुष्य के गुन मे भी जो गाने की गुरु हो
जाते हैं । अबे, बहों, बोई बुद्ध रहा है ।

(जाता है)

[रानी शक्तिमती और कारायण का प्रवेश]

रानी—क्यों सेनापति, तुम तो इस पद से घड़े सन्तुष्ट होगे ? अपने मातुल की दशा तो अब तुम्हें भूल गई होगी ?

कारायण—नहीं रानी ! वह भी इस जन्म में भूलने की बात है ! क्या करूँ, गल्लिकादेवी की आज्ञा से मैंने यह पद ग्रहण किया है; किन्तु हृदय में चढ़ी ज्वाला भभक रही है !

रानी—पर तुम्हें इसके लिये चेष्टा करनी चाहिये । न कि स्त्रियों की तरफ़ रोंते से काम चलेगा । विरुद्धक ने तुमसे भेंट की थी ?

कारायण—कुमार घड़े साहसी हैं ? मुझसे कहने लगे कि “अभी मैंने एक हत्या की है और उससे मुझे यह धन मिला है, जो तुम्हें गुप्त सेना-संगठन के लिये देता हूँ । मैं फिर उसोग में जाता हूँ । यदि तुमने धोखा दिया तो विचार लेना शैलेन्द्र किसी पर दया करना नहीं जानता ।” उस समय तो मैं केवल घात ही सुनकर स्तब्ध रह गया । वस स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया—रानी ! उस युवक को देखकर मेरी आत्मा काँपती है !

रानी—अच्छा, तो प्रयत्न ठीक करो । और सहायता मैं दूँगी । पर यहाँ भी अच्छा खेल हुआ.....

कारायण—हम लोग भी तो उसी को देखने आये थे. आश्चर्य, क्या जाने, कैसे वह स्वो जी उठी ! नहीं तो अभी ही गौतम का सब महात्मापन भूल जाता ।

रानी—अच्छा, अब हम लोगों को शीघ्र चलना चाहिये,

अज्ञानरूप

सब जनता मगर की ओर जा रही है। देखो, साक्ष्यान रहना, मेरा सब की बदल गया होगा।

बागवत—कुछ मेना अपनी मित्र को प्रभुता कर लेगा हूँ तो हि. राजमेना में बगवत मिली-जुली रहेगी और काम के समय हमारी आजा मानेगी।

रानी—और की एक बात कहेंगे—हीरास्त्री का दूत आया है, साक्ष्यान: हीरास्त्री और हीरास्त्री की मेना मित्रकर आजात पर आक्रमण करेंगी। उस समय तुम क्या करेंगे ?

बागवत—उस समय लोगों की तरह मगर पर आक्रमण करेंगे और सम्भवतः हमें सब आक्रमण को बन्दी बना-
येगा। करने पर ही बात करने पर में निरटेगी।

रानी—(कुछ सोच कर)—अच्छा।

(दोनों जाने हैं)

(परन्तु निरन्तर)

नवीं दृश्य

स्थान—जीवाणों का पथ

[जीवक और वसंतक]

वसंतक—(हँसता हुआ)—तब इसमें मेरा क्या दोष ?

जीवक—जब तुम दिनरात राजा के समीप रहते हो और उनके सहचर बनने का तुम्हें गर्व है, तब तुमने क्यों नहीं ऐसी चेष्टा की—

वसंतक—कि राजा विगड़ जायें ?

जीवक—अरे विगड़ जायें कि सुधर जायें । ऐसी बुद्धि की.....

वसंतक—धिप्पार है । तो इतना भी न समझे कि राजा अपने चाहे पीछे सुधर जायें, अभी तो हमसे विगड़ जायेंगे ।

जीवक—तब तुम क्या करते हो ?

वसंतक—दिनरात सोचा किया करते हैं । भिजली की रेखा की तरह टेढ़ी जो राजशक्ति है उसे दिनरात सँवार कर, पुचकार कर, भयभीत होकर, प्रशंसा करके सीमा करते हैं । नहीं तो न जाने किस पर वह गिरे ! फिर महाराज ! पृथ्वीनाथ ! वयार्थ है, आश्चर्य ! इत्यादि के काव से पुटपाक.....

जीवक—चुप रहो, वकी मत, तुम्हारे ऐसे मूर्खों ने ही तो सभा को विगड़ रक्खा है ! जब देखो परिहास !

वसंतक—परिहास नहीं अट्टहास । उसके बिना क्या लोगों का अन्न पचता है ! क्या बल है—तुम्हारी बूढ़ों में ? अरे ! जो

मैं ममा को बनाऊँ; तो क्या अपने को बिगाड़ूँ ? और फिर माइ, सेंहर दुर्वा देवता को मोरदत्त करता फिरूँ ? देखो न अपना मुँह आदमी में—बड़े ये ममा बनाने, राजा को सुधारने ! इस समय तो.....

जोषण—तो इसमें क्या ? हम अपना वर्ज्य पात्रन करने हैं, दुःख में विचलित तो दोने नहीं—

कोम मुन का नहीं, न तो घर है ।

प्राण वर्ज्य पर निहाल है न

बगन्नद—तो इसमें क्या ? हम भी अपना घेद पानने हैं, अपनी मर्ज्या बनाये रहने हैं; बिगो और के दुःख से हम भी हम से मम नहीं होने—एक बात घर भी नहीं, माममा ? और काम बिगना मम पर और मुरीत करने हैं, तो भी जानते हो ? जहाँ करोगे अपना की कि "हमें ममों", हम लकात ही मम पर मुरीने घर में बंगने हैं कि "मोःःः"

जोषण—जधो गेधो ।

बगन्नद—क्या मुम्हारे नाम को ? घरें गों तुम्हारेसे कोनभगी, तो राजा को मममाया बाटने हैं । मंटों बहवार बरके करे भी लह बाजा और अपने मुन को बट देना । जो जीम अपना मरुद मने के लिये बनी है, वमें मर्थ हिमाना-मुत्ताना ! करें, करें तो जह राजा ने एक लम्बी चौड़ी आजा मुनाई, वगी ममव "दधार्थ है कीमल" बहवार विनंग होकर मर्दन मुखा ली—बत इति को । नहीं तो राजममा मे बेटने चीन देता है !

जीवक—तुम लोग-जैसे चातुकारों का भी कैसा प्रथम जीवन है !

वसन्तक—और आप-जैसे लोगों का उत्तम ? कोई माने चाहे न माने—दोग अड़ाये जाते हैं ! मनुष्यता का ठोका लिये फिरते हैं !

जीवक—अच्छा भाई, तुम्हारा कहना ठीक है, जाओ, किसी प्रकार से पिंड भी छूटे ।

वसन्तक—पद्मावती देवी ने कहा है कि आर्य जीवक से कह देना कि अज्ञात का कोई अनिष्ट न होने पावेगा, केवल शिष्टा के लिये ही यह आयोजन है । और माताजी से विनती से कह देंगे कि पद्मावती बहुत शीघ्र उनका दर्शन आवस्ती में करेगी ।

जीवक—अच्छा तो क्या युद्ध होना अवश्य है ?

वसन्तक—हाँ जी, प्रसेनजित भी प्रस्तुत हैं । महाराज उदयन से मन्त्रणा ठीक हो गई है । आक्रमण हुआ ही चाहता है । महाराज विन्ध्यसार की समुचित सेवा करने अब वहाँ इस लोग आया ही चाहते हैं, पत्तल परसा रहे—समक न ?

जीवक—अरे पेट, युद्ध में तो कौयें गिद्ध पेट भरते हैं !

वसन्तक—और इस आपस के युद्ध में ब्राह्मण भोजन करेंगे, ऐसी तो शान्न की आज्ञा ही है । क्योंकि युद्ध से प्रायश्चित्त लगता है । फिर बिना, ह-ह-ह-ह

जीवक—नाओ महाराज, दण्डवत !

(दोनों जाते हैं)

(पट-परिवर्तन)

दसवीं हरप

मगध में छत्तना का प्रवेश

(छत्तना और अत्रागन्तु)

अत्रागन्तु—बस योही सी सफलता मिलते ही अत्रागन्तु ने लम्बीर का मोरक गिरा दिया। पेट भर गया। क्या तुम भूख गए दि 'मन्मथप्रसाददीपिका'।

अत्रागन्तु—सो ! क्या हो। युद्ध में बड़ा भयानकता होगी है, किन्तु मियाँ अनाथ हो जाते हैं। मौनिक जीवन का महत्वमय विषय न जाने किस पदचक्रधारी मन्त्रिक की भयानक कल्पना है। मगधना में जो नासाय वृत्ति मानव की दुर्बी हुई रहती है जातीकी इसमें नगरेजना दिखती है। युद्धमय का हरप बड़ा भीषण होता है !

छत्तना—बाप ! क्यों बन्द कर ले ? यदि ऐसा ही था तो क्यों बंद कर लेता ? मिश्रामय पर बीना ?

अत्रागन्तु—मुझारी अज्ञान में सो, मैं अज्ञान भिदासन से हूँ बर बिरा की मीरा करने को प्रयुक्त हूँ।

देवदत्त—(मीरा बरके)—दिगु अथ बहुत दूर तक बढ़ जाते, सोने बर मयद नहीं है। बर देवो, बोरान और गीशास्त्री की मन्त्रिकीय मयद मयद का मयदनी अभी क्या रही है !

अत्रागन्तु—कई काल मयद बोरान पर अत्रागन्तु हो जाया है अत्रागन्तु अत्रागन्तु ही न मियाँ।

देवदत्त—अत्रागन्तु का मयद मयद अत्रागन्तु अभी बर रहा

दूसरा शंफ

है, किन्तु क्या समुद्रदत्त के ही भरोसे आप सम्राट् बने थे ?
यह निर्बोध गिलासी—उमका ऐसा परिणाम तो होना ही था ।
पौरुष करनेवाले को अपने बल पर विश्वास करना चाहिये ।
युवराज !

दलना—यशे ! मैंने क्या भरोसा किया था कि तुम्हें भरत-
गण्ड का सम्राट् देखूँगी और चौरप्रवृत्ती होकर एक बार गर्व
से तुमसे पराजय-नन्दना कराऊँगी, किन्तु आह ! पति-सेवा से भी
वंचित हुई और पुत्र का.....

देवदत्त—नहीं, नहीं, राजमृता दुःखों न हों । अजातशत्रु
तुम्हारा अमूल्य धोररत्न है । रण की भयानकता देख कर तो
वीर धनञ्जय का भी हृदय विचल गया था !

(सदसा विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक—माता, वन्दना करता हूँ । भाई अजात ! क्या तुम
विश्वास करोगे—मैं साहसिक हो गया हूँ ! किन्तु मैं भी राजपुत्र
हूँ, और हमारा तुम्हारा ध्येय एक ही है ।

अजात०—तुम्हें ! कभी नहीं, तुम्हारे पडयन्त्र से समुद्रदत्त
मारा गया, और.....

विरुद्धक—और कोशलनरेश को पाकर भी मेरे कहने से
छोड़ दिया, क्यों ? यदि मेरी मन्त्रणा लेते तो आज तुम मगध
और मैं कोशल में सम्राट् होकर सुख भोगता । किन्तु, उस दुष्टा
मल्लिका ने तुम्हें.....

अजात०—हाँ, उसमें तो मेरा ही दोष था । किन्तु अब तो

मगध और बोरान आपस में शत्रु हैं, फिर हम तुम पर विश्वास क्यों करें ?

विद्वज्—देवन एक बात विश्वास करने की है। यही कि तुम बोरान नहीं पारने और मैं बारी-सहित मगध नहीं खाता। देवों, मेनारति बारायण हों। बोरान की मेना का मेना है। वह मिता हुआ है, और बिरान मम्मतिन बाहिनी सुप्र ममुर के समान गर्भन कर रही है। मैं मगध मेवर शत्रु करता हूँ कि बोरानों की मेना पर मैं आदरता वरुंगा और दीर्घायन के कारण जो निर्वैर बोरान मेना है उस पर तुम; तिसमें तुम्हें विश्वास बना रहे। यही समर्थ है, विद्वज् टीक नहीं।

अज्ञान—कुमार विद्वज् ! क्या तुम अपने पिता के विद्वद कहें होंगे ? और किस विश्वास पर—

विद्वज्—जब मैं पुरुषुन और अममानिन इच्छि हूँ तब मुझे अविज्ञान है कि मेमिष्ट कार्य में किसी का भी पक्ष प्रहारा कर गहूँ, क्योंकि यही अविज्ञान ही सबसे मगध आतीमिका है। हों पिता से मैं स्वयं नहीं कहूँगा। इसी तिर बोरानों की मेना पर मैं आदरता करता करता हूँ।

देवन और अज्ञान—यह अविज्ञान का समय नहीं है। मगधन शरीर ही तुम्हें करने है।

अज्ञान—तैली का भी काता।

(अज्ञान फिर और जगती जाती है)

(अज्ञान में अज्ञान, विद्वज् और अज्ञान की पुर-बाता)

(अविज्ञानमय)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—मगध में राजकीय भवन

(छलना और देवदत्त)

छलना—धूर्त ! तेरी प्रवृत्तना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई, पुत्र बन्दी होकर विदेश को गया और पति को मैं स्वयं बन्दी बनाये हूँ । पाखण्ड, तूने ही यह चक्र रचा है !

देवदत्त—नारी ! क्या तुम्हें राजशक्ति का घमंड हो गया है, जो इस परिधाजकों से इस तरह की बातें करती है ? तेरी राज-लिप्ता और महत्याकांक्षा ने ही तुमसे सब कुछ कराया—तू दूसरे पर क्यों क्षेपारोपण करती है, क्या तुम्हें ही राज्य भोगना है ?

छलना—पाखण्ड ! जब तूने धर्म के नाम पर उत्तेजित करके मुझे कुशिता दी, तब नहीं सोचा । गौतम को कलंकित करने के लिये कौत श्रावस्ती गया था ? और किसने मतवाला हाथी दौड़ा कर उसके प्राण लेने की चेष्टा की थी ? ओह ! मैं किस भ्रान्ति में थी ! जी चाहता है कि इस नरपिशाच मूर्ति को अभी मिट्टी में मिला दूँ ! प्रतिहारी !

प्रतिहारी—(प्रवेश करके) महादेवी की जय हो । क्या आज्ञा है ?

द्वजना—यसो इस मुद्रिये की बन्दी बनायो और बागरी
को पक्ष राखो ।

(अज्ञानी इतिथि करता है, देवदत्त बन्दी होता है)

देवदत्त—दमका कन तुम्हें मिलेगा ।

द्वजना—आपन, बापिनो को भय दिगता है । आगाह की
पदादी नही को हाथों में रोह लेता चाहता है ! देवदत्त ! ध्यान
गल्ला इस अरका में नारी क्या नहीं कर सकती है ! अब
तेरा अभिराज मुझे नहीं दगा सकता । नृअवने बर्गम भोगने के लिये
बन्धन हो जा ।

(बागरी का प्रवेश)

द्वजना—अब तो तुम्हारा इत्य सम्पुष्ट हुआ ?

बागरी—क्या बदली हो द्वजना ? अज्ञान बन्दी हो गया तो
तुम्हें कुछ मिला, वह क्या जैसे तुम्हारे सुख में मिलनी ? क्या वह
मेरा पुत्र नहीं है ?

द्वजना—मैंने मुँह की कापन । अब तेरी बागों में मैं ठहरी
नहीं होने की । और इतना गहका, इतना बुर-बागुरी । आज मैं
बागों इत्य को लिखाव लूँगी, जिससे वह सब धरे में । बागरी,
समय-सम । मैं मुझे मिट्टी हो रही हूँ ।

बागरी—द्वजना ! कगका मुझे दर नहीं है । यदि मुझे इसमें
कोई सुख मिले तो सुख बने । किन्तु एक बात और विचार लो—
क्या बंटाव के भोग अब मेरी यह अवस्था मुझे तो अज्ञान
की और शीघ्र कुछ का देने के बदले कोई दूसरा कगका मे वाकिफ
होते ।

दलना—तब क्या होगा ?

वासवी—जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है, किन्तु तुम्हें एक बार दोहन अनिच्छा-पूर्वक भी जाना ही होगा और अज्ञान को ले आने की चेष्टा करनी ही होगी ।

दलना—यह और भी अन्याय बतलाया—जो हाथ का है उसे भी जाने दूँ ! क्यों तामची ! पचावती को पड़ा रही हो !

वासवी—यहिन दलना ! तुम्हें तुम्हारी बुद्धि पर खेद होता है । क्या मैं अपने प्राण को डरतूँ हूँ ? या सुन्द-भोग के लिये जा रही हूँ ? ऐसी अवस्था में आर्यपुत्र को मैं छोड़ कर पली जाऊँगी, ऐसा भी तुम्हें अब तक विश्वास है ? मेरा उद्देश्य केवल विवाद मिटाने का है ।

दलना—इसका प्रमाण ?

वासवी—प्रमाण आर्यपुत्र हैं । दलना, चाँको मत । तुम भी उन्हीं की परिणीता पत्नी होतथ भी, तुम्हारे विश्वास के लिये मैं उन्हें तुम्हारी दृष्टि-रेख में छोड़ जाऊँगी । हाँ इतनी प्रार्थना है कि उन्हें कोई कष्ट न होने पावे, और क्या कहूँ, वे ही तुम्हारे भी पति हैं । हाँ, देवदत्त को मुक्त कर दो । चाहे इसने कितना भी हम लोगों का अनिष्ट-चिंतन किया है, फिर भी परिव्राजक मार्त्तन्दीय है ।

दलना—(प्रहरियों से)—छोड़ दो इसको, फिर काला सुग्घ मगध में न दिखावे । (प्रहरी जेदते हैं, देवदत्त जाता है)

वासवी—देखो, राज्य में आतङ्क न फैलने पावे । दृढ़ होकर मगध का शासन करना ! किसी को कष्ट भी न हो । और प्यारी

अज्ञानगुरु

छात्रना ! यदि हो सके तो आर्यपुत्र की सेवा करके नारी-जन्म मायंक कर लेना ।

छात्रना—बागरी ! बहिन !—(रोते लगती है)—मेरा कुलीक मुझे दे दो, मैं मोगर मोगरी हूँ । मैं नहीं जानती थी कि निर्माण में इतनी कठिनाई और इतना क्रोह-सन्तान के लिये, इस हृदय में संभव था । यदि जानती होती तो इस निर्धुरता का त्याग न करती ।

बागरी—रानी ! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पानना है, दया का चट्टम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर है, तो पुनरायण का श्रोग क्यों करती ? रो मत, बहिन ! मैं जाती हूँ, तुम्हें मममति कुलीक ननिहात गया है ।

छात्रना—तुम जानो ।

(वर-वर्तिमान)

दूसरा दृश्य

स्थान—कोशल के राजमहल से लगा हुआ बन्दीगृह

(जाजिरा का प्रवेश)

जाजिरा—(आप ही आप)—क्या विप्लव हो रहा है ! प्रकृति से विद्रोह करके नये साधनों के लिये कितना प्रयास होता है । अन्धी जनता अन्धेरे में दौड़ रही है । इतनी छीना-फपटी, इतना स्वार्थ-साधन कि सहज प्राप्य अन्तरात्मा के सुख-शान्ति को भी लोग खो बैठते हैं ! भाई भाई से लड़ रहा है, पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है, स्त्रियों पतियों पर प्रेम नहीं किन्तु शासन करना चाहती हैं ! मनुष्य मनुष्य के प्राण लेने के लिये शस्त्र-कला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओं को लेकर कवि कविता करते हैं ! वर्षर रक्त में और भी उष्णता उत्पन्न करते हैं ! राजमन्दिर बन्दीगृह में बदल गए हैं ! कभी सौदागर से जिसका आतिथ्य कर सकते थे उसे बन्दी घना कर रक्खा है ! सुन्दर राजकुमार ! कितनी सरलता और निर्भीकता इस विशाल भाल पर अङ्कित हैं ! अहा ! जीवन धन्य हो गया है ! अन्तःकरण में एक नवीन स्फूर्ति हो गई है । एक नवीन संसार इसमें बन गया है । यही, यदि प्रेम है तो अवश्य स्पृष्टणीय है, जीवन की सार्थकता है, कितनी सहानुभूति कितनी कोमलता का आनन्द मिलने लगा है !

एक दिन पिता जी का पैर पकड़ कर प्रार्थना करूँगी कि इस बन्दी को छोड़ दो । किसी राष्ट्र का शासक होने के बदले इस प्रेम के शासन में रहने से मैं प्रसन्न रहूँगी । मनोरम सुकुमार

पुणियों को दायाँ हृदय में आविर्भाव निरोभाव होने देखूँगे
और और बन्द कर लूँगे ।

(गाना)

हमने जीवन का उताव हमने जीवन-धन का राग ।

हमारी बदना के दो सुंदर, मिटे पृथ्व, हुआ सलोच ॥

हरि दो पुत्र भी रहने दो, न यों जमना दो भगनी कामि ।

देमने दो हाथ भर भी लो, मिटे गीर्वाण देन कर कामि ॥

नही लो विष्णुता का धना बला दो चान भवन के बाग ।

हरि हरि शाय, विष्णु केराय केरा मे ही उद्यम प्राग ॥

(गिरदी सुनती है, बड़ी भयानकदु रिगारें देने हैं)

अपराध—इस हयमा रत्नी में अन्धता की सुदृगार विदुष-
नी तुम कौन हो ? सुन्दरी, बड़े दिन मैंने देखा, मुझे धन हुआ कि
यद काट दे ! किन्तु नही, अब मुझे विद्याम हुआ दे कि भगवान
ने बरसा की मूर्ति में दे भिने भेजी दे । और इस बन्दीगृह में भी
कैसे गानों का बरफ इच्छा कीरा बन रही दे ।

अभिजात—गान हुआ ' मेरा परिचय कने पर तुम पुत्र
बोले और फिर मैं बने पर मुँह में भोले-नव में बड़ी मृदुलि
हुँगी । हम लोग इसी तरह अतिरिक्त रहें । अभिजातों ने गये
रह करे, किन्तु वे ही रहें । उन्हें कोरने का अधिकार है ही ?
क्या, तुम इसे सब बरत-रति में देखो और मैं वृत्तता के पुन
मुझे बालों का बहाव बनी जगा बर्तते ।

अपराध—सुन्दरी ! वह अधिकार बड़े दिन का पुत्र । अब
पैदा नहीं रहता दे । मुझे अज्ञात कीचक देना ही होता ।

बाजिरा—ओह ! राजकुमार ! मेरा परिश्रम पाकर तुम सन्तुष्ट न होगे, नहीं तो मैं क्षिप्रवी क्यों ?

अजात०—तुम चाहे प्रसेनजित की ही कन्या क्यों न हो किन्तु मैं तुमसे असन्तुष्ट न हूँगा; मेरी समस्त शक्ती अकारण तुम्हारे चरणों पर लोटने लगी है सुन्दरी !

बाजिरा—मैं वही हूँ राजकुमार ! फोराल की राजकुमारी । मेरा ही नाम बाजिरा है ।

अजात०—सुनता था कि प्रेम द्रोह को पराजित करता है । आज विश्वास भी हो गया । तुम्हारे उदार प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को विजित कर लिया ! अब यदि फोरालनरेश मुझे बन्दी-गृह से छोड़ दें तब भी.....

बाजिरा—तब भी क्या ?

अजात०—मैं कैसे जा सँगा !

बाजिरा—(ताली निकाल कर जंगला खोलती है, अजात पाछा भाता है) अब तुम जा सकते हो । पिता की सारी मित्रियाँ मैं सुन लूँगी । उनका समस्त क्रोध मैं अपने वक्ष पर वहन करूँगी । राजकुमार ! अब तुम मुक्त हो, जाओ !

अजात०—यह तो नहीं हो सकता । इस उपकार के प्रतिफल मैं तुम्हें अपने पिता से तिरस्कार और भर्त्सना ही मिलेगी सुन्दरी ! सो, अब यह तुम्हारा धिरबन्दी मुक्त होने की चेष्टा भी न करेगा ।

बाजिरा—प्रिय राजकुमार ! तुम्हारी इच्छा, किन्तु फिर मैं अपने को रोक न सकूँगी और हृदय की दुर्बलता या प्रेम की सबलता हमें व्यथित करेगी ।

अज्ञान०—राजकुमारी ! तो हम लोग एक दूसरे को प्रेम करने के अयोग्य हैं, ऐसा कोई मूर्ख भी नहीं कहेंगा ।

राजिा—नर प्राणनाथ ! मैं अपना गर्वार्थ मुझें सम्पूर्ण करती हूँ ।—(जगदी माया कहवाती है)

अज्ञान०—मैं अपने ममेय वश मुझें लौटा देना हूँ प्रिये ! हम तुम अविप्र हैं । यह जंगली हिरन—हम स्वर्गीय मन्त्रीव था—बोझी भरना भूल गया है । अब यह तुम्हारे प्रेम-गारा में पूर्ण रूप में बद्ध है ।—(जेबूटी पहना है)

(आराधन कर गङ्गा घरेल)

आराधन—यह क्या ! बर्नीश में प्रेमजीवा ! राजकुमारी ! तुम कैमं यहाँ आई हो ? क्या गन्तविषय की बर्नीशना मुख गाँ हो ?

राजिा—जगदा जगद देवे के शिर मैं बाध मरी हूँ ।

आराधन—छिन्नु यह बाध एक जगद की आराधनका है । वह तुम मरी, तो महापुत्र के सम्मुख देना ही होगा । बन्नी, तुमने देना सादर क्यों दिया ?

अज्ञान०—मैं तुमसे बात भी नहीं दिया करता । तुम्हारे महापुत्र से मैं प्रणिहित हूँ—एकंद सेवकों से नहीं ।

आराधन—राजकुमारी ! मैं जंगल जंगल के शिवे बाध हूँ । हम जगदी महापुत्र को शिवों की शिवा देवी ही होगी ।

राजिा—क्यों, बन्नी जग तो गया मरी, आराधन का प्रदाय ही क्यों मरी दिया, शिव ?

आराधन—शिव, अन्ध ! देवी सम्मल आराधनों पर तुमने

पानी फेर दिया है। और, भगवानक प्रतिहिंसा मेरे हृदय में जल रही है। वस युद्ध में मैंने तुम्हारे लिये ही.....

याजिरा—सावधान ! कारायण ! अपनी जाँभ बन्द करो !

अजात०—कारायण ! यदि तुम्हें कुछ घाटुपल का भरोसा हो तो हृन्द-युद्ध के लिये मैं आज्ञान करता हूँ।

कारायण—मुझे कोई चिन्ता नहीं, यदि राजकुमारी की प्रतिष्ठा पर आँख न पहुँचे। क्योंकि मेरे हृदय में अभी भी स्थान है। क्यों राजकुमारी, क्या कहती हो ?

अजात०—तब और किसी समय। मैं अपने स्थान पर जाता हूँ। जाओ राजनन्दिनी !

याजिरा—किन्तु कारायण ! मैं आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ।

कारायण—यहाँ तक ! कोई चिन्ता नहीं। इस समय तो चलिये, क्योंकि महाराज आया ही चाहते हैं।

(अजात अपने जंगले में जाता है, एक ओर कारायण और राजकुमारी याजिरा जाती हैं, दूसरी ओर से वासवी और प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेन०—क्यों कुलीक, अब क्या इच्छा है ?

वासवी—न न, भाई ! खोल दो। इसे मैं इस तरह देख कर घात नहीं कर सकती हूँ। मेरा वश कुलीक...

प्रसेन०—बहिन ! जैसा कहो। (खोल देता है, वासवी शङ्ख में ले लेती है।)

अजात०—कौन ! विमाता ? नहीं तुम मेरी माँ हो ! माँ ! इतनी ठंडी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननी

अज्ञानानु

की शक्तिज्ञान का अनुभव दिया है। मैंने बड़ा अपमान दिया है
मैं ! क्या तुम क्षमा करोगी ?

बासवी—बस कुशोक ! वह अपमान भी क्या अब मुझे स्म-
रण है। तुम्हारी माता, तुम्हारी माँ नहीं है, मैं तुम्हारी माँ हूँ। वह
मो जान है, अपने मेरे सुपुत्रार बच्चे को बन्दी-गृह में भेज दिया।
मार्ग, मैं हूँ शीघ्र स्वयं के मित्रागत पर भेजना चाहती हूँ, तुम
इसके जाने का प्रबंध कर दो।

अज्ञानः—नहीं माँ, अब कुछ दिन कम विषैली वायु में अज्ञान
रहने दो। तुम्हारी शीघ्रतः छाया का बिनाय मुझमें अभी नहीं
होना जानता।

(जाने देव देव है, बासवी अज्ञान का हाथ रकती है ।)

(पर-वर्तमान)

तीसरा दृश्य

स्थान—कानन का प्रान्त

विरुद्धक—आर्द्र हृदय में करुण-कल्पना के समान आकाश में कादम्बिनी घिरी आ रही है। पवन के अन्मत्त आलिङ्गन से चक्राजि सिहर उठती है। सुजसो हुई कामनाएँ मन में अक्षुरित हो रही हैं। क्यों ? जलदागमन से ? आह !

अलका की किस विकल विरहिणी को पलकों का छे अपलम्ब,
मुन्नी सों रहे थे इतने दिन, कैसे है नीरद निकुम्ब !
धरत पड़े क्यों आज अधानक सरसिज कानन का सकोच,
अरे जलद में भी यह ज्वाला ! हुकेहुपू क्यों किसका सोच ?
किस निष्ठुर ठंडे हत्तल में जमे रहे तुम बर्फ समान ?
पिघल रहे हो किस गर्मी से ? हे करुणा के जीवन-प्रान !
चपला की प्याकुलता लेकर घातक का छे करुण-विलाप,
तारा-आँसू पोंट गगन के, रोते हो किस दुरस से भाप ?
किस मानस-निधि में न गुंथा था बद्धानल जिससे धन भाप;
प्रणय-प्रभाकर-कर से बढ़कर इस अनन्त का करते माप ।
क्यों गुगनू का दीप जला, है पथ में पुष्प और आलोक
किस समाधि पर धरसे आँसू किसका है यह शीतल-शोक ?
यके प्रयासी धनजाराँ से लौटे हो मन्थर गति से;
किस अतीत की प्रणय-पिपासा जगती चपला-सी स्मृति से ?

(मलिका का प्रवेश)

मलिका—तुम्हें सुखी देखकर मैं सन्तुष्ट हुई कुमार !

विरुद्धक—मल्लिका ! मैं तो आज टहलता-टहलता कुटी में

इतनी दूर बला आया हूँ। अब जो मैं सफल होगया, तुम्हारी इस सेवा से मैं ज़ाबन भर उछलूँ नहीं हूँगा।

मन्दिता—अच्छा किया। तुम्हें स्वयं देग कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम अपनी राजधानी को लौट जा सकते हो; किन्तु मैं तुमसे कुछ कहूँगी।

विद्वद्व—तुम्हें भी तुमसे बहुत कुछ करना है। मेरे हृदय में बड़ी गहनता है। यह तो तुम्हें विरिण या विसंतापति वस्तुतः को मैंने ही बताया है, और वसां को तुमने इतनी सेवा की। हमने क्या मैं समझूँ। क्या मेरी राधा निर्मल नहीं है? यह दो मन्दिता!

मन्दिता—विद्वद्व! तुम कमरा मनमाना अर्थ लगाने का प्रयत्न करो। तुमने समझा होगा कि मन्दिता का हृदय कुछ विचलित है; कि! तुम राजकुमार हो न, इमीतिथे। अच्छी बात क्या तुम्हारे मन्दिता से कभी कहाँ हो नहीं? मन्दिता कम मिठी की नहीं है, जिगरी तुम समझते हो।

विद्वद्व—किन्तु मन्दिता! अर्थात् मे तुम्हारे ही तिर सेग वसंताप विद्वत्। जिना ने जब तुमसे मेरा प्यार करने को समझा-कार दिया, वसो समझ में मैं जिना के विद्वत् हुआ और वस विद्वत् का यह परिणाम हुआ।

मन्दिता—इसके निम्न मैं कुछ नहीं हो सकती। राज-कुमार! वसंताप जीवम भी क्याय विने कान्त अर्थ समझा। और यह मेरी जिगरी की मन्दिता की। जब हमसे मैं वसंताप हो गई वस तुम्हें कहाँ का विचार हुआ। विद्वद्व, तुम्हारा राज-कुमार इतने ही ही नहीं समझी। तुम्हें वसिष्ठगुरु के

निरीद प्राणियों का किसी की भूल पर निर्दयता से वध किया, तुमने पिता से बिद्रोह किया, विश्वासघात किया, एक वीर को घोंका देकर मार डाला और अपने देश के, जन्मभूमि के, विरुद्ध अजब प्रहार किया ! तुम्हारे ऐसा नीच और कौन होगा ? किन्तु यह सब जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिये उठा लाई।

विरुद्धक—तब क्यों नहीं मर जाने दिया ? क्यों फलंकी जीवन बचाया—और अब.....

महिला—तुम इस लिए नहीं बचाए गए कि फिर भी एक विरक्त नारी पर बलात्कार और लम्पटता का अभिनय करो। जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुर्मों का प्रायश्चित्त करो। अपनेको सुधारो।

(श्यामा का प्रवेश)

श्यामा—और भी एक भयानक अभियोग है—इस नर-राक्षस पर ! इसने एक विश्वास करने वाली स्त्री पर अत्याचार किया है, उसकी हत्या की है ! क्यों शैलेन्द्र ?

विरुद्धक—अरे श्यामा !

श्यामा—हो शैलेन्द्र, तुम्हारी नीचता का प्रत्यक्ष उदाहरण मैं अभी जीवित हूँ। निर्दय ! चारुडाल के समान क्रूर कर्म तुमने किया ! ओह, जिसके लिये मैंने राजधानी का सुख छोड़ दिया, अपने वैभव पर ठोकर लगा दी, उसका ऐसा आचरण ! प्रति-हिंसा तो नहीं, पश्चात्ताप से सारा शरीर भस्म हो रहा है !

महिला—विरुद्धक ! यह क्या, जो रमणी तुम्हें प्यार करती है, जिसने सर्वस्व तुम्हें अर्पण किया था, उसे भी तुम न

अज्ञानमय

महं ! मुझसे मरणा मुझ को ऐसे शरीर-रस को पाने का प्रयास
करता है—जिसकी प्राप्ति भी तुझने के योग्य नहीं हो !

विद्वत्—मैं इसे बेरस मानता था ।

श्यामा—और मैं तुम्हें बड़ा भयानक पर भी चाहने लगती
थी ! इनका मुझसे कर मेरा विचार था । अब मैं नहीं जानती
की कि तुम कोताह के राजकुमार हो ।

महिका—यदि तुम प्रेम का प्रतिदान नहीं जानते हो तो स्वयं
एक सुदृढ मारी-हृदय को छेदर तम पैरों में क्यों रीढ़ने हो ?
विद्वत् ! क्या कहोगे, यदि हो सके तो इसे चरमाओ !

श्यामा—नहीं देवी ! अब मैं कानही सेवा करूँगी, राजकुमार
मैं बहुत भोग चुकी हूँ । अब तुम्हें राजकुमार विद्वत् का विद्या-
मय भी अच्छे नहीं है, मैं तो रीढ़ने बड़ा को चाहती थी ।

विद्वत्—श्यामा, अब मैं अब तक से प्रसन्न हूँ और
क्या भी कहूँगा हूँ ।

श्यामा—अब तुम्हें, मुझका हृदय अभिराम देगा, यदि मैं
जग कर हूँ हूँ । विद्वत् नहीं, विद्वत् ! अभी तुमने कानही
कराया था नहीं है ।

महिका—राजकुमार ! जानो, कोताह और मरने, और
यदि तुम्हें अपने विद्या के कण कण से हर जानता हो तो मैं
तुम्हारी सेवा से बड़ा करूँगी । तुम्हें विद्वत् है कि कानही मेरी
कराये ।

विद्वत्—नेकता ! कानही की मुक्ति ! है विद्या कानही
के बड़ा करूँगी । विद्या कानही तुम्हें, तुम्हारी कान से, कान से

तीसरा अंक

प्राण बचाऊँ ! देवी, ऐसे भी जल इसी संसार में हैं, वही तो यह भ्रम-पूर्ण संसार ठहरा है ।—(पिरों पर गिरता है)—देवि ! अधम का अपराध क्षमा करो ।

गहिजा—उठो राजकुमार ! चलो, मैं भी भाग्यस्ती चलती हूँ । महाराज प्रसेनजित से तुम्हारे अपराधों को क्षमा करा दूँगी और इस कोराज को छोड़ कर चली जाऊँगी । श्यामा, तब तक तुम इस कुटीर पर रहो, मैं आती हूँ ।

(दोनों जाते हैं)

श्यामा—जैसी छाया ।—(स्वगत)—जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं—वही वो सम्पूर्ण मनुष्यता है । मागंधी, धिक्कार है तुम्हें !

(गाती है)

स्वर्ग है नहीं दूसरा और ।

समन हृदय परम करुणामय यही एक है और ।

सुभा सलिल से मानस जिसका पूरित प्रेम विभोर ।

नित्य कुसुम नय कल्पद्रुम की छाया है इस ओर ॥

स्वर्ग है—

(पट-परिवर्तन)

धोया हरण

कानन—पहोछ

(दोहें-कानन की लगी लज्जती)

लज्जती—बाहिर सननी-कन्या है । (मैं) तो कुछ बरा
भी और तुम जल्द हो कि मैं इस समय बीजात की बंदगी में
हो गई बंदी हूँ । बिन्दु बीजात के मन्त्रवर्ति आराधन का धन-
दान करें, ऐसा तो.....

कानन—अपने ! इस द्वार में भी गहर और बर में भी
गहर । बिन्दु को भी मुँह दिमागें लादक नहीं रहे और बाहिर
भी नहीं मिली ।

लज्जती—मुझकी मुँहों । जब कानन के कुछ में मैंने मुझे
अपने बिन्दु का सब कुछ समझात बन गए थे, और हमारे बंधे
को धोया दिया । जब मुझको है कि वह हरण के हाथ में कातत
हवा है । कानन क्या भी नहीं है ।

कानन—है बिन्दुम बिन्दु है कि कुछ बिन्दुम भी
नहीं है । वह हीन बंधन करेगा ।

लज्जती—बिन्दु तुम जल्द हरण हो और अज्ञानता
हो, है बंधन नहीं कानन की । बिन्दु मुझको कानन का
हरण है, लगी की लोका बंधन करे को कानन कानन रहे हो !
बंधन ! है लज्जती.....

कानन—जब कानन लगी ? कानन लगी को कानन का कानन का
कानन का कानन लगी, कानन बिन्दुम-कानन कानन लगी !

शक्तिमती—क्या प्राणीमात्र में साम्य की घोषणा करनेवाले पुरुष हो हैं ? वे अपने समाज के आगे अङ्ग को इस तरह पद-दलित और पैर को धूलि समने हुए हैं ! क्या उन्हें अन्तःकरण नहीं है ? क्या स्त्रियों अपना कुछ अस्तित्व नहीं रखती ? क्या उनके जन्मसिद्ध कोई अधिकार नहीं हैं ? क्या स्त्रियों का सब कुछ, पुरुषों की कृपा से मिली हुई भिन्ना मात्र है ? मुझे इस तरह पदच्युत करने का किसी को क्या अधिकार था ?

कारायण—स्त्रियों के संगठन में, उनके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही एक परिवर्तन है—जो स्पष्ट मतजाता है कि वे शासन कर सकती हैं, किन्तु अपने हृदय पर । वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर—जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो । यह मनुष्य पर राजरानी के समान एकाधिपत्य रख सकती हैं, तब उन्हें इस दुरभिसन्धि की क्या आवश्यकता है—जो केवल सदाचार और शांति को ही नहीं शिथिल करती, किन्तु उच्छृङ्खलता को भी आश्रय देती है !

शक्तिमती—फिर बार बार यह अवहेलना कैसी ? यह बहाना कैसा ? हमारी असमर्थता सूचित कराकर हमें और भी निर्मूल आशंकाओं में छोड़ देने की कुटिलता क्यों है ? क्या हम मनुष्य के समान नहीं हो सकते ? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतंत्रता नहीं पददलित की गई है ? देखो, जब गौतम ने स्त्रियों को भी प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दी, तब क्या वे ही सुकुमार स्त्रियों परिव्राजिका के कठोर व्रत को अपनी सुकुमार देह पर नहीं उठाने का प्रयास करतीं ?

कारायण—देवी ! किन्तु यह साम्य और परिव्राजिका होने की

विधि थी तो कहीं मनुष्यों में न किया न फैला है। मर्यादाओं के कारण वे जगदीश को प्रार्थना करने में मजबूर हुए, किन्तु समाज भर में न तो स्त्रीयों की कमी है न पुरुषों की। और, सब एक दर्ज के हैं भी नहीं, फिर मनुष्य-समाज पर ही आश्रय क्यों? जिसकी अन्धकारों की वृष्टियों का विनाश महाकार का ध्यान करने होगा—उही को सज्जन कर्मों का रूप देनी है। मेरी प्रार्थना है कि तुम भी इन मजबूर मनुष्यों की वृष्टि में मिलकर बंधन न बनो।

सन्निवृत्ति—कब कब करें ?

वागवत्—विषमर में सब कार्य सब के तारे मही हैं, इसमें
 सब विषय है अकारण । मूल्य करना काम अज्ञाना-व्यवस्था हुआ
 करना है और अज्ञाना सभी आशोक को शीतलता में भी बना है ।
 क्या सब लोगों में करना हो सकता है ? मनुष्य स्त्री और पुरुष
 अनेक जीव-संसार में प्राणि पर अकारणिक अविचार करने भी
 सब अज्ञान करता है, जो सबके अज्ञान का कारण प्रदेय है, सबका
 सब हीन-विषय है । और वह अज्ञान-व्यवस्था को मूल्य मूल्य
 अज्ञान का अज्ञान अज्ञान का अज्ञान, अज्ञान-अज्ञान को शरीर
 अज्ञान को अज्ञान, अज्ञान-अज्ञान को अज्ञान अज्ञान, अज्ञान
 अज्ञान अज्ञान के अज्ञान-अज्ञान के अज्ञान अज्ञान है । सब अज्ञान
 अज्ञान-अज्ञान, अज्ञान अज्ञान अज्ञान है । सब अज्ञान
 अज्ञान । अज्ञान अज्ञान को अज्ञान अज्ञान है, और अज्ञान को अज्ञान ।
 अज्ञान का अज्ञान है अज्ञान, और अज्ञान का अज्ञान है—
 सब अज्ञान । अज्ञान अज्ञान है सब अज्ञान है—अज्ञान, अज्ञान-अज्ञान

का उन्नततम विकास है जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। इसीलिये प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहन आवरण दिया है, रमणी का रूप। संगठन और आधार भी वैसे ही हैं। उन्हें दुरुपयोग में न ले आओ। आंकार की पाशवृत्ति—जिसका परिणाम कठोरता है—स्त्रियों के लिये तो क्या मनुष्य के लिये भी नहीं है। वह अनुकरणीय नहीं है, वह नियम का अपवाद है। उसे नारी जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विद्रुव होगा। फिर कैसी स्थिति होगी, यह कौन कह सकता है।

शक्तिमती—फिर क्या पदच्युत करके मैं अपमानित और पददलित नहीं हो गई ? क्या—यह ठीक था ?

कारायण—पदच्युत होने का अनुभव करना भी एक दम्भ-मात्र है ! देवी ! एक स्वार्थी के लिये समाज क्षोपी नहीं हो सकता। क्या मल्लिकादेवी का उदाहरण कहीं दूर का है। वही लोलुप नरपिशाच हमारा और आपका स्वामी, कोशल का सम्राट् क्या क्या उनके साथ कर चुका है, यह क्या आप नहीं जानती ? फिर भी उनकी सती मुलम वास्तविकता देखिए और अपनी कृत्रिमता से तलना कीजिए।

शक्तिमती—(स्तिर झुकाकर)—हाँ कारायण ! यहाँ तो मुझे स्तिर झुकाना ही पड़ेगा।

कारायण—देवी ! मैं एक दिन में इस कोशल को उलट-पलट देता, छत्र चमर लेकर हठात् विरुद्धक को सिंहासन पर बैठा देता, किन्तु मन के विगड़ने पर भी मल्लिकादेवी का शासन

ब्रह्मसूत्रम्

मुझे सुमन में मरी हवा मचा ! हम और आर देवों की हिंसा
ही होयन के निशान पर राजकुमार विप्लव बैठेंगे, पर
आरही मन्त्रालय के प्रतिष्ठान ।

(विद्यार्थक और महिला का प्रवेश)

राष्ट्रियता—आपके अधिकार को मैं अभिमान करता हूँ।

बाराबाद—मैं नमोदर करता हूँ ।

(विष्णुचरण नाम का काम हुआ है)

कविता—इसलिए विनोद, विषय शक्तिशाली हैं। कविता, कथा
 का भी राजकुमार को समझाते बताते हैं कि मनुष्यता की स्थिति
 निराले की चेष्टा करती है। तुम जानती हो, मुझसे प्रेम करने
 कथा तुम्हें इतिहास के आधार पर बता दे। कथा और विद्वत्
 देश का तुम्हारा सम्बन्ध क्या है? कथा और विद्वत्

गमिनी—कहिये मृत भी देवी! क्या करना। कहिये
कहिये—साक्षात् भी नहीं जानिये भी ।

४३११—बालू, गुग्गु, शीतल, कण्ट, मोष, कदली, हेंच, गे.
 इन्हे मंगल का कर्मोद्धार दख दे । शरी ! श्री और गुग्गु भी बर्ग
 लिखवा दख दे कर्मोद्धार है । शियों का कर्मोद्धार है कि कदाचल
 बर्ग गुग्गु, कदली, शीतल, कण्ट और कदली, कदली, कदली
 शीतल के कर्मोद्धार कर्मोद्धार शिवा श्री कर्मोद्धार है—यम शीतल,
 शीतल, कदली, कदली और कदली का कर्म कर्मोद्धार है श्री
 शीतल । इन्हे कर्म कर्मोद्धार है । कर्मोद्धार और
 कर्मोद्धार का कर्मोद्धार कर्मोद्धार कर्मोद्धार है इन्हीं कर्मोद्धार
 ४३१२—कर्मोद्धार । कर्मोद्धार कर्मोद्धार कर्मोद्धार है कर्मोद्धार । कर्मोद्धार

हे कि अजात और याजिरा का ज्यादा होने वाला है । तुम भी उस उत्सव में अपने घर को सूना मत रखो । चलो ।

शक्तिमती—आपका आशा शिरोधार्य है देवी !

कारायण—तो मैं आशा चाहता हूँ । क्योंकि मुझे शीघ्र पहुँचना चाहिये । देखिये, पैतालियों की बीणा बजने लगी । सम्भवतः महाराज शीघ्र ही सिंहासन पर आया चाहते हैं ।—(राजकुमार विरुद्धक से)—राजकुमार ! मैं आप से भी क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि आप जिस विद्रोह के लिये मुझे आशा दे गये थे मैं उसे करने में असमर्थ था—अपने राष्ट्र के विरुद्ध यदि आप अन्तःप्रहार न करते तो सम्भवतः मैं आपका अनुगामी हो जाता, क्योंकि मेरे हृदय में भी प्रतिहिंसा थी । किंतु वैसा नहीं हो सका । इससे मेरा अपराध नहीं ।

विरुद्धक—उदार सेनापति, मैं हृदय से तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ । और स्वयं तुमसे क्षमा माँगता हूँ ।

कारायण—मैं सेवक हूँ सुवराज !

(जाता है)

(पट-परिवर्तन)

पौषपौ हरप

आन—बोरल की राजसभा

(बाबू के लो में बाबूसायु और बलिता का प्रवेश,
 लीला, बलिता, लिखा, बाबू और
 बाबूसायु का प्रवेश)

लीला—बचपन के बरान्त ! यह शुभमसम्बन्ध आनन्दमय हो !

बाबू—देवी ! बाबूसायु बाबूसायु है, जो मेरे में
 बाबूसायु का नाम है ! बलिता, तुम चलो !

लीला—लिखू बाबूसायु ! मेरी एक प्रार्थना है !

बाबू—बाबूसायु बाबूसायु है बाबूसायु !

लीला—हम बाबूसायु, बलिता, बलिता का नाम
 है ! हम तुम बाबूसायु का नाम लिखू बाबूसायु
 नहीं है, तो भी ...

बाबू—हम बाबूसायु का नाम लिखू बाबूसायु
 भी लिखू बाबूसायु का नाम लिखू बाबूसायु !

लीला—लिखू बाबूसायु का नाम लिखू बाबूसायु
 है ! यह भी बाबूसायु बाबूसायु है—बाबूसायु
 बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु
 बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु

बाबू—है बाबूसायु बाबूसायु है बाबूसायु !

लीला—हम बाबूसायु का नाम लिखू बाबूसायु
 बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु बाबूसायु

हूँ। अब मेरी सेवा मुझे मिले, उससे मैं बन्धित न होऊँ, यही मेरी प्रार्थना है।

प्रसेन०—(महिला का मुँह देखता है)

मल्लिका—समा करना ही होगा महाराज ! और उसका योग मेरे सिर पर होगा। मुझे विश्वास है कि यह प्रार्थना निष्फल न होगी।

प्रसेन०—मैं उसे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ।

(क्षत्रियता को हाथ पकड़ कर उठाया है, वह सिंहासन पर बैठी है)

मल्लिका—मैं कुतूहल हुई सम्राट् ! समा से पड़कर दण्ड नहीं है, और आपकी राष्ट्रनीति इसी का अवलम्बन करे, मैं यही आशीर्वाद देती हूँ। किन्तु एक बात और भी है।

प्रसेन०—वह क्या है ?

मल्लिका—मैं आज अपना सभ बदला चुकाना चाहती हूँ, मेरा भी कुछ अभियोग है।

प्रसेन०—वह पड़ा भयानक है ! देवि, उसे तो आप क्षमा कर चुकी हैं; अब !

मल्लिका—तब आप यह स्वीकार करते हैं कि भयानक अपराध भी क्षमा कराने का साहस मनुष्य को होता है।

प्रसेन०—विपन्न की यही आशा है। तब भी.....

मल्लिका—तब भी ऐसा अपराध क्षमा किया जाता है, क्यों सम्राट् ?

प्रसेन०—मैं क्या कहूँ ? इसका उदाहरण तो मैं स्वयं हूँ देवी !

संजीवनी—अब यह राजकुमार विरहदह भी समा का अभि-
कारी है ।

संजीवनी—हिन्दु यह राज्य का छोड़ी है, क्यों धर्मभ्रष्टारी,
धर्म का क्या दण्ड है ?

संजीवनी—सुन्दरदह मन्त्रालय ।

संजीवनी—राज्य ! विद्रोही बनने के कारण भी आप
ही हैं । राज्य पर विरहदह राज्य का एक महा धर्मभ्रष्टारी हैं
गणतन्त्र का । और हमें क्या, मैं तो भीतर का खुदी हूँ कि
विरहदह धर्मभ्रष्टारी भी धर्मभ्रष्टारी हैं ।

संजीवनी—अब विरहदह को समा दिया जाय ।

विरहदह—मित्र, मेरा धर्मभ्रष्टारी और समा कीया ! विद्रोही
को और धर्मभ्रष्टारी देना ? मेरी धर्मभ्रष्टारी में क्या नहीं छोड़ी है ।
मुझे और भी चाहिए । चाहिए धर्मभ्रष्टारी समा । धर्मभ्रष्टारी के
धर्मभ्रष्टारी देना । मेरी मित्र ! मुझे धर्मभ्रष्टारी युव को समा कीया ।

(धर्मभ्रष्टारी है)

संजीवनी—धर्मभ्रष्टारी ! मित्र का धर्मभ्रष्टारी धर्मभ्रष्टारी देना है
कि मित्र धर्मभ्रष्टारी नहीं देना गणतन्त्र । मेरा युव मुझे धर्मभ्रष्टारी
धर्मभ्रष्टारी है, धर्मभ्रष्टारी के धर्मभ्रष्टारी को क्या है, मैं यह धर्मभ्रष्टारी
धर्मभ्रष्टारी देना का हूँ । धर्मभ्रष्टारी धर्मभ्रष्टारी मैं मैं मित्र नहीं यह
धर्मभ्रष्टारी, मैं धर्मभ्रष्टारी नहीं यह धर्मभ्रष्टारी ।

संजीवनी—हिन्दु धर्मभ्रष्टारी ! धर्मभ्रष्टारी का भी धर्मभ्रष्टारी
धर्मभ्रष्टारी ।

संजीवनी—अब मेरा धर्मभ्रष्टारी है । हिन्दु धर्मभ्रष्टारी का धर्मभ्रष्टारी
१२५

दंड, नहीं-नहीं, यह किसी शासक पिता का काम है। जन्म विग्रहक ! उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

(विग्रहक को बढाता है)

(बुद्ध का प्रवेश)

सय—भगवान के चरणों में प्रणाम ।

गौतम—विनय धीरे शील की रक्षा करने में सय दक्षिण रहें, जिससे प्रजा का कल्याण हो—कल्याण की विजय हो। आज मुझे सन्तोष हुआ, कोशलनरेश ! तुमने अपराधी को क्षमा करना सीख लिया, यह राष्ट्र के लिये कल्याण का बात हुई। फिर भी अभी तुम इसे स्थाय्यपुत्र क्यों कह रहे हो ?

प्रसेन०—नदाराज यह दासी-पुत्र है। सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता।

गौतम—यह दम्भ तुम्हारा प्राचीन संस्कार है। क्यों राजन् ! क्या दास, दासी मनुष्य नहीं हैं ? क्या कई पीढ़ी ऊपर तक तुम प्रमाण दे सकते हो कि सभी राजकुमारियों की सन्तान इस सिंहासन पर बैठी हैं, या प्रतिज्ञा करोगे कि कई पीढ़ी आने वाली तक दासीपुत्र इस पर न बैठने पावेंगे। यह छोटे-बड़े का भेद क्या अभी इस संकीर्ण हृदय में इस तरह घुसा है कि नहीं निकल सकता ? क्या जीवन की वर्तमान स्थिति देखकर प्राचीन अन्य विश्वासों को, जो न जाने किस कारण होते आए हैं, तुम बदलने के लिए प्रस्तुत नहीं हो ? क्या इस क्षणिक भव में तुम अपनी स्वतन्त्र सत्ता अनन्तकाल तक बनाए रखोगे ? और भी क्या उस आर्यपद्धति को तुम भूल गए कि पिता से पुत्र की गणना होती है ? राजन्.

अज्ञानानु

गावधान हो, इस अपनी सुयोग्य शक्ति को स्वयं कुण्ठित न बनाओ, वरन् इसने कलितपणु में निरीह प्राणियों का बंध करके बड़ा अन्धकार दिया है और कारणवश भूतना भी यह तब करने मग्न था, किन्तु अब इसका हृदय देवी मन्त्रिका की कृपा में शुद्ध हो गया है। इसे तुम सुवचन बनाओ।

मय—धन्य है। धन्य है ॥

प्रश्नः—बय पीपी आया—इस व्यवस्था का कीन अति-कमल कर मरना है, और यह मेरी प्रमत्तता का कारण भी होता। प्रभु, आरम्भो ऐसा से मैं आनन्द सर्वतन्त्रम हुआ। और क्या कहा है ?

पौनः—बूढ़ मरी। तुम लोग कर्मन्त्र के तिरंगे मग्न के अतिवर्ती करने में हो, जगत्तु दुःखयोग न करो। मूलपुत्र का भेद का, बहन्ना का, धन्य का समान नै-न्यो। प्राणीमात्र में मनुष्यमूर्ति को विज्ञान करो। इन छद्म विचारों से बाँध कर करने बर्जित से बहुत न हो जानें।

प्रश्नः—जैसी कहा। बही होता।

(अज्ञानानु जगत्तु विरह के लगे लगने हैं)

अज्ञानः—जैसे विरह, मैं तुमसे दूरी कर रहा हूँ।

विरहः—और मैं वह दिन दौड़ के दौड़ कि तुम भी इसी हृदय करते जिस से मुझ किने लगे।

अज्ञानः—तुम्हारी कल्पना मग्न हो।

विरहः—जैसे विरह, मैं तुम्हें बड़ा दुःख भूत लगे। क्या ऐसा कर्म अज्ञान है जो दुःखों की रोगों के।

तीसरा बांक

विरुद्धक—नहीं, नहीं, मैं तुमसे लज्जित हूँ। मैं तुम्हें सदैव द्वेष की दृष्टि से देखता करता था, उसके लिये तुम मुझे क्षमा करो।

वाजिरा—नहीं भाई ! यही तो तुम्हारा अत्याचार है।

(सय जाने हैं)

वासवी—(स्वनव)—अहा ! जो हृदय विकसित होने के लिये है, जो गुल हँस कर स्नेह-सहित बात करने के लिये है, उसे लोग कैसा दिगाड़ते हैं। भाई प्रसेन, तुम अपने जीवन-भर में इतने प्रसन्न कभी न हुए होगे, जितने आज। कुटुम्ब के प्राणियों में स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा। भगवान, क्या कभी यह भी दिन आवेगा, जब विश्वभर में एक कुटुम्ब स्थापित हो जायगा—मानव मात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सम्हालेंगे।

(जाती हैं)

(पट-परिवर्तन)

छठवाँ दृश्य

स्थान—वृष

(बाणेश्वर करने हुए दो नायक)

वर्द्धक—हिमी ने भी शक्ति का मेगा परिचय दिया है ।
महामर्त्यता का मेगा प्रवेश मया—सौद ।

दूता—देवदत्त का शोचनीय वसिष्ठान् देवदत्त मुझे भी
आकर्षित हो गया । जो एक शत्रु संघ स्थापित करना चाहते थे
उसी की मदद करा.....

वर्द्धक—अब मगधान में मित्रता ने कहा कि, देवदत्त
आपका राजा होने का रहा है, उसे रोचना चाहिये.....

दूता—अब, अब ?

वर्द्धक—अब कहिये देवदत्त की मदद कि बचाने की,
देवदत्त मेरा दुश्मन बनने लगे हैं और मगधान । वह शत्रु मेरे पास
आने का प्रयत्न । हमने इसकी शक्ति नहीं, क्योंकि हमने देव है ।

दूता—किस बात हुआ ?

वर्द्धक—कहा कि देवदत्त मगधान जाने का प्रयत्न के कारण
अब मगधान में अन्त होने लगा । कहा की जा मगधान कि हमें
बच हुआ—कैसे का देवदत्त ने मगधान कि हमने मगधान में देवदत्त
का मदद कर की । वह कि मगधान में दिखाई देता ।

दूता—आपने ? मगधान की मगधान शक्ति है । मगधान, मगधान
मगधान में मगधान मगधान मगधान मगधान । देवदत्त का मगधान मगधान
मगधान मगधान में मगधान मगधान है । कहा—मगधान मगधान मगधान

स्निग्ध गन्धौर दृष्टि, किसको नहीं आकर्षित करती। कैसा पिल-
सरा प्रभाव है !

पहिला—जहाँ तो बड़े-बड़े सम्राट लोग बित्त होकर
उनकी आज्ञा पालन करते हैं। देखो यह भी कभी हो सकता था
कि राजकुमार विरुद्धक पुनः युवराज बनाये जावे। भगवान ने
समझा कर महाराज को ठीक कर ही दिया—और वे आनन्द से
युवराज बना दिये गये।

दूसरा—हाँ जी चलो, आज तो भाव्यों-भर में महोत्सव
है ! हम लोग भी घूम-घूम कर आनन्द लें।

पहिला—भादसी पर से आतंक का भेव टल गया, अब तो
आनन्द-ही-आनन्द है। इधर राजकुमारी का ज्योद भी मगधराज
से हो गया। अब युद्ध-विपद् तो कुछ दिनों के लिये शान्त हुए।
चलो हम लोग भी महोत्सव में सम्मिलित हों।

(एक ओर से दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से वसन्तक का प्रवेश—)

वसन्तक—फटी हुई बाँसुली भी कहीं बजती है ! एक कहावत
है कि “रहे मोची के मोची।” यह सब प्रहों की गड़बड़ी है। ये एक
बार ही शतता बड़ा काण्ड उपस्थित कर देते हैं। कहीं साधारण
ग्राम्यवाला ! हो गई थी राजधानी ! मैं देख आया। यही गानधी
ही तो है। अब आम की बारी लेकर बेचा करती है और लड़कों
के ढंले खाया करती है। ब्रह्मा भी कभी भोजन करने के पहिले मेरी
ही तरह भौंग पी लेते होंगे, तभी तो ऐसा उलटफेर... ऐं, किंतु,
परन्तु, तथापि वही कहावत ‘पुनर्मुपिको भव’ ! एक चूहेको किसी
श्रेष्ठि ने दया करके शेर बनाया, वह उन्हीं पर गुराने लगा।

अज्ञानशत्रु

जब मरने लगा तो बंद में बाधाजी बोले 'पुनर्मूर्ति हो भव', या
 क्या फिर जूरा बन जा। और बंद रह गये मोपी के मोपी।
 महादेवी बागवदगा को बंद मनाचार बतकर सुनाईगा। हमने
 तो बने कहिषान मिषा, दे अवरग बही। अरे उगीके केर में सुभे
 देर हो गई। महाशत्रुने वैवाहिक कटहार भेजे थे, मो अब तो
 कीड़े पड़ गये। लड़कू मिलेगे। अजी बार्मी हांगा मो बया—
 मिलेगे मो—बंद। किन्तु, नगर में तो आभोच-भाजा दिमाई
 देनी दे। महाशत्रुने वैवाहिक महाशत्रुका अभी अन्त नहीं हुआ,
 मो बने।

(अन्त)

(अन्त-विरहभंजन)

ज्ञानार्थी दृश्य

ज्ञान—आत्मकानन

(भाग्यवर्ती भाग्यवर्ती)

भाग्यवर्ती—(भाग ही भाग)—बाद-री मिलति ! कैने-कैसे दृश्य देखने में आये—कभी दैलों को धारा देते-देते हाथ नहीं धरते थे, कभी अपने हाथ से सज्ज का पात्र तक उठा कर पीने से संकोच होता था, कभी शॉल का धोका एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोक्ता था और कभी निर्लज्जा गणिका का आनन्द मनोनीव हुआ ! इन पुद्धिमत्ता का कहीं ठिकाना है । सामाजिक रूप के परिवर्तन की इच्छा तुम्हें इतनी विषमता में ले आई । अपनी परिस्थिति को नयन में न रख कर प्यार नाल्य का डोंग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख-विप्ला ही में पड़ी—उसी का यह परिणाम है । स्त्री-मुलभ एक रिंग्रता, सरलता की मात्रा कम हो जाने से जीवन में कैसे घनाघटी भाव आ गये ! जो अब केवल एक संकोचदायिनी स्मृति के रूप में अवशिष्ट रह गये ।

(गान)

स्वजन दीक्षिता न विश्व में भय, न मित्र अपना दिखाय कोई ।
पड़ी अकेली विफल हो रही, न दुःख में है सहाय कोई ॥
पलट गये दिन सनेह पाछे, नशा न भय तो रही न मर्मा ।
न नौद सुख की, न रहस्यियाँ, न सेज उजली बिछाय सोई ॥

करी न कुछ इस बात बिना की, अगर गया हूँ नहीं तो था ।
अभीष्ट बिना बिना रही है, बिना नहीं कि अगर होई ॥
अभिष्ट वेदना अन्तर्गत गुण का, समस्त बिना गुण में कहेता ।
अन्तर्गत वेदना का कहेता न ही अन्तर्गत न कहेता ॥

(कहेता वेदना का कहेता कहेता है, गुण का कहेता—)

(फिर का कहेता कहेता है)

कहेता—कहेता ! कहेता कहेता !

कहेता—(कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता)—कहेता का
कहेता । कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।

कहेता—कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।

कहेता—कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।

कहेता—कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।
कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता कहेता ।

पड़ना । उठो, असंख्य जाएँ तुम्हारे उपयोग से अट्टहास में परि-
णत हो नक्की हैं ।

सागन्धी—घना में मेरी विजय हुई नाथ ! मैंने अपने जीवन
के प्रथम पैर में ही आपको पाने का प्रयास किया था । किन्तु यह
समय नहीं था, यह ठीक भी नहीं था । आज मैं अपने स्वामी को,
अपने नाथ को, अपना कर भन्य हो रही हूँ ।

गौतम—सागन्धी ! अब उन अतीत के विकारों को क्यों
स्मरण करती है; निर्मूल हो जा !

सागन्धी—प्रभु, मैं नारी हूँ, जीवन-भर असफल होती आई
हूँ । मुझे इस विचार के मुरझ से न वञ्चित कीजिये । नाथ ! जन्म-
भर के पराजय में भी आज मेरी ही विजय हुई ! पतितपावन ! यह
बुद्धा आपके लिये भी महत्त्व देनेवाला है और मुझे तो सब कुछ ।

गौतम—अच्छा आम्रपाली ! कुछ विज्ञापोगी ?

सागन्धी—(भान की टोकती लकार रखती हुई)—प्रभु ! अब
इस आम्र-फानन की मुझे आवश्यकता नहीं, यह संघ को
समर्पित है ।

(संघ का प्रवेश)

संघ—जय हो, अमिताभ की जय हो ! बुद्ध शरणं...

सागन्धी—गच्छामि ।

गौतम—संघ शरणं गच्छामि ।

सब मिलकर—धर्म शरणं गच्छामि ।

(पट-परिवर्तन)

आठवाँ दृश्य

मान—प्रवेश

(वस्त्रावली और छत्र)

मान—बेटी ! तुम बड़ी हो, मैं सुनि में तुमसे बोली हूँ । मैं तुम्हारा अनाथ बचपन सुनें भी तुम दिसा और आला पथ पर बत का स्वयं भी दुःखी हुई ।

वस्त्रा—हाँ, मुझे सज्जित न करो । तुम, क्या मेरी माँ मही हो । मैं, माँ के बचपन हुआ है । अना, कैला मुन्ना मन्दा-मा बचा है ।

मान—वस्त्रा ! तुम और अनाथ मन्दा-मा माँ-बहिन हो, मैं भी सबकुछ एक बचपन हूँ । बहिन कागरी क्या मेरा अनाथ बचा कर लेगी ?

(वस्त्रा की प्रवेश)

मान—(वस्त्रा की प्रवेश पर)—तुम्हारे भी मुन्नी कागरी में जल्दी हो । मुझे भी बचपन होना था ।

वस्त्रा—हाँ । हो-ही मैं मुन्नी हूँ क्या मेरा अनाथ बचपन है ?

वस्त्रा—(वस्त्रा की प्रवेश पर)—बड़ी मही, हमने तुम्हारे भी बचपन बचपन सुनें बचपन सुना दिसा, भियका दिसा हो-ही तुम्हारे में मैं कागरी मही का बचपन । दिसा-ही मैं तुम्हें क्या मही बचपन ।

मान—(वस्त्रा की प्रवेश पर)—तुम भी बहिन हैं ही तुम्हारे बचपन बचपन । बचपन मैं तुम दिसा बचपन सुनें तुम्हें हो-ही का बचपन है । तुम दिसा हो-ही बचपन हो मही है । जो मन्दा-मा

का काम तो सुम्हीं ने कर दिया था । पति को तो वश में किया ही था, मेरे पुत्र को भी अपनी गोद में ले लिया । मैं.....

वासवी—छलना ! तू नहीं जानती, मुझे एक वश की आवश्यकता थी, इसलिये तुझे नौकर रख लिया था—अब तो तेरा काम नहीं है ।

छलना—बहिन इतनी कठोर न हो जाओ ।

वासवी—(हँसती हुई)—अच्छा जा, मैंने तुझे अपने वश की धात्री बना दिया । देखो, अबकी अपना काम ठीक से करना, नहीं तो फिर.....

छलना—(हाथ जोड़कर)—अच्छा स्वामिनी !

पद्मा—क्यों माँ ! अजात तो यहाँ अभी नहीं आया । वह क्या छोटी माँ के पास नहीं आवेगा ?

वासवी—पद्मा ! जब उसे पुत्र हुआ तब उससे कैसे रहा जाता । वह सीधा श्रावस्ती से महाराज के मन्दिर में गया है । सन्तान उत्पन्न होने पर अब उसे पिता के स्नेह का मोल समझ पड़ा है ।

छलना—बेटी ! पद्मा ! चल । इसीसे कहते हैं कि काह की सौत भी बुरी होती है । देखी निर्दयता—अजात को यहाँ न आने दिया ।

वासवी—चल, चल, तुझे तेरा पति भी दिला दूँ वशा भी । यहाँ बैठकर मुझसे लड़ मत कंगालिन !

(सब हँसती हुई जाती हैं)

(पट-परिवर्तन)

से भैरव-द्वार परता है, उसी पर स्नेह का अभिरंग करने के लिये प्रस्तुत रहता है। उन्माद ! और क्या ? मनुष्य क्या इस पागल विश्व के शासन से अलग होकर कभी निर्दोषता नहीं प्रदर्श कर सकता ? जीवन की शालीनता नहीं धारण कर सकता ? हाथ-रे मानव, क्यों इतनी दुरभिलाषाएँ विजली की तरह तू अपने हृदय में आलोकित करता है, क्या निर्मल ज्योति तारागण की गंधुर किरणों के सदृश सद्वृत्तियों का विकास तुझे नहीं गचता ! भयानक भावुकता, उद्वेगजनक अन्तःकरण लेकर क्यों तू व्यग्र हो रहा है ? किसे अपने इस प्रोक्त में दवावेगा ? जीवन की शान्तिमयी सभी परिस्थिति को छोड़कर व्यर्थ के अभिमान में तू कब तक पड़ा रहेगा ? यदि मैं सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के भुरमुट्ट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन की किली लहर को सुरभित करके धीरे से उस धाले में घू पड़ता—तो इतना भीषण चीरकार इस विश्व में न गचता। उस अस्तित्व को अनस्तित्व के साथ मिलाकर कितना सुखी होता ! भगवान्, अनन्त ठोकरें खाकर लुढ़कते हुए जड़ प्रहृषिणों से भी तो इस चेतन मानव की बुरी गत है ! धक्के-पर-धक्के खाकर यह निर्लज्ज सभा से नहीं निकलना चाहता। कैसी विचित्रता है। अहा ! वासवी भी नहीं है। कब तक आवेगी।

जीवक—(प्रवेश करके)—सम्राट् !

विन्मसार—चुप ! यदि मेरा नाम न जानते हो तो मनुष्य कह कर पुकारो। यह भयानक सम्बोधन मुझे न चाहिए !

छलना—(प्रवेश करते वरान करदही है)—नाय ! मुझे निश्चय हुआ कि यह मेरी इच्छाएँ थीं । यह मेरी कूट-धातुरी थी, दन्ध को मकोप था । नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं पथित कर दी गई । द्वि-पत्नियों के सहस्राक्षी वन्दोगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी । दण्डनायक ! मेरे शासक ! क्यों न वरमा समय, शील और विनय के नियम भङ्ग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड दिया ! क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की संश्रया के गर्ते में मुझे खाल दिया है, यह मैं भोग चुकी । अब बँधारिये !

विन्ध्यसार—छलना दण्ड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था । अब देखें कि क्षमा करना भी मेरे सामर्थ्य में है कि नहीं !

वासवी—(प्रवेश करके)—आर्यपुत्र ! अब मैंने इसको दण्ड दे दिया है, यह मातृत्व पद से च्युत की गई है, अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद मिला है । एक राजमाता को इतना बड़ा दण्ड कम नहीं है । अब आपको क्षमा करना ही होगा ।

विन्ध्यसार—वासवी ! तुम मानवी हो कि देवी ?

वासवी—धृता हूँ ! मैं मगध के सम्राट् की राजमहिषी हूँ । और, यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई है, और यह कुलीक मेरा पञ्चाक्ष मगध का युवराज है और आपको भी.....

विन्ध्यसार—मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूँ वासवी !

वासवी—क्या ?

विन्ध्यसार—कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी हाथ का खिलौना हूँ ।

तीसरा—वह रथ द्वार पर खड़ा है, और रामकुमार कुशोंक भी जा रहे हैं ।

विष्णु—पुत्रीक होन ! मेरा पुत्र, या मरण का सपना
कहा करता ?

कल्याणः—(रोते-करते)—बिधा ! आरुघ्यपुत्र, यह कुर्मीक मेरा मे प्रिय है ।—(पै बन्दना है)

विशङ्गा—मही, मही, मगरात अज्ञानरातु को मिहामन
की मर्मादा मही मंग करनी आदिर । मेरे दुर्पत परत—आह,
होह हो ।

अज्ञानः—शरीर विना । पुनः का शरीर सिद्धासन है । अतः
मृत्यु होने का सिद्धासन देकर भूमे इस समय अविद्यार में स्थिति
विना । अज्ञान पुनः का भी जीवन क्या करता है ?

निष्कर्ष—मित्र ! विष्णु, यह तुम को समझा रहा है ।
 लक्ष्मी को समझाने का यह प्रयत्न मित्र को क्यों ?

कागज :-—येही दिना, मुझे भय हो गया था । मुझे कागजी दिना की जितनी थी । दिना का केवल संशयित्व ही स्वतंत्रता का प्रतिफल । कागजी की दिना पर मे कागज की मर्यादा का भय कागजपुत्र का ।

विचार—यह भी तो सुनने सुनान की ही ही ही ही विचार
की : सुनने की ही—सुनाना ।

॥ अथ श्रीगणेशोपनिषत् ॥
ॐ नमः शिवाय ॥

छलना—(प्रवेश करके करल पड़ती है)—नोय ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्वेगदता थी । वह मेरी कूट-चातुरी थी, दम्भ का प्रतीक था । नारी-जीवन के स्वर्ग में मैं वशिल कर दी गई । ईद-पत्तियों के माहलरूपी चन्द्रीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी । दण्डनायक ! मेरे शासक ! क्यों न उन्ही समय, शील और विनय के नियम भङ्ग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड दिया ! क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम को संशया के गर्त में मुझे डाल दिया है, वह मैं भोग चुकी । अब सवारिये !

विन्ध्यसार—छलना दण्ड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था । अब देख कि क्षमा करना भी मेरे सामर्थ्य में है कि नहीं !

वासवी—(प्रवेश करके)—आर्यपुत्र ! अब मैंने इसको दण्ड दे दिया है, वह मातृत्व पद से स्रुत की गई है, अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद भिला है । एक राजमाता को इतना बड़ा दण्ड कम नहीं है । अब आपको क्षमा करना ही होगा ।

विन्ध्यसार—वासवी ! तुम मानत्री हो कि देवी ?

वासवी—यता दूँ ! मैं मगध के सम्राट् की राजमहिषी हूँ । और, यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई है, और यह कुलीक मेरा यश इम मगध का युवराज है और आपको भी.....

विन्ध्यसार—मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूँ वासवी !

वासवी—क्या ?

विन्ध्यसार—कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी स्त्रियों का खिलौना हूँ ।

महाभारत

बामनी—जब तो महाराज मैं लेना चढ़ती हूँ लेना ही
कीजिये । नदी तो आगहो डेकर मैं नदी चढ़ूँगी ।

विश्वामित्र—तो गुहारी बिसय हूँ बामनी ! क्यों आताय !
तुम होने पर बिना के मेरे का गौरव तुम्हें बिदिन हुआ—देगी
कहती बात हूँ !

कुमार—(कविता होकर गिर हुआ लेता है)

कदा—(डरोन करते)—विगाही, मुझे बहुत दिनों में
आने कुछ नदी दिया है, पौत्र होने के कारण मैं तो मुझे
दुख अभी कीजिये, नदी तो मैं कदाक मचाकर हम कुली को
करावाँती ।

विश्वामित्र—नदी कदा ! कहा नू भी आ गई ।

कदा—हाँ विगाही ! कदा भी आये है । क्या मैं पही ले
जाऊँ ?

बामनी—यत काती ! मेरी सोने-नी बहुत ! हम तरह क्या
नहीं-ही काकी—(मिसे देखा हो वही करते ।

विश्वामित्र—तुम करने तो आकर मुझे आशय में काज
दिया । प्रयत्न में मेरा भी पवता पठा है !

कदा—को फिर मुझे पुनःकार कीजिये ।

विश्वामित्र—कदा लेनी ?

कदा—(नदी में ही बँधी को, कहा को, आता कर कीजिये ।
कदा—तुम्हें काका कहें की है । फिर ...

विश्वामित्र—कदा—(नदी में ही पुनः । कदा
काका । जो फिर है कदा कदा कदा भी पुनः का कदा—

तीसरा अंक

केवल दामा—मौन पर भी नहीं देगा ! तुम्हारे लिये यह कोरा
सदैव खुला है । बड़ो छलना तुम्हें भी ! (भगवान्‌गुरु को गले लगाता है)

पद्मा०—तब मेरी बारी !

विन्यसार—हाँ कद भी.....

पद्मा०—यन चल कर भगव के नवीन राजकुमार को एक
स्नेह-सुम्भन आशीर्वाद के साथ दीजिये ।

विन्यसार—तो फिर शीघ्र चलो—(उग्रर गिर पड़ता है)—
ओह ! इतना मुग्य एक साथ मैं सहन नहीं कर सऊँगा ! तुम सब
बहुत देर को आये ! (कौपता है)

(गीतन का प्रवेश, भगव हाथ उठाते हैं)

(आलोक के साथ ययनिका-पतन)

इति राम्



